राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला

ग्रन्थांक–205

प्रधान सम्पादक

श्रीमती वीना लाहोटी आर. ए. एस.

निदेशक, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर

राजा जयसिंह कृत

काव्यरस

सम्पादक

डॉ. देवेन्द्र

असिस्टेन्ट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग

जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर

प्रकाशक

राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर

RAJASTHAN ORIENTAL RESEARCH INSTITUTE, JODHPUR

2002

मूल्य 105/– रुपये

राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला

ग्रन्थांक—205

प्रधान सम्पादक
श्रीमती वीना लाहोटी आर. ए. एस.
निदेशक, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर

राजा जयसिंह कृत

काव्यरस

सम्पादक
डॉ. देवेन्द्र
असिस्टेन्ट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग
जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर

प्रकाशक
राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर
RAJASTHAN ORIENTAL RESEARCH INSTITUTE, JODHPUR

2002

मूल्य 105/— रुपये

राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला

राजस्थान रांज्य द्वारा प्रकाशित

सामान्यतः अखिलभारतीय तथा विशेषतः
राजस्थानदेशीय पुरातन कालीन संस्कृत, प्राकृत,
अपभ्रंश, हिन्दी राजस्थानी आदि भाषानिबद्ध
विविध वाङ्मय प्रकाशिनी विशिष्ट ग्रन्थावली

प्रधान सम्पादक

श्रीमती वीना लाहोटी आर. ए. एस.

निदेशक, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर

ग्रन्थांक–205

राजा जयसिंह कृत

काव्यरस

प्रकाशक

राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर

2002 मूल्य.105/– रुपये

आस्था को

विषय-सूची

		पृष्ठ संख्या
I-	निदेशकीय	
II-	प्राक्कथन	
III-	कृतिकार	1
IV-	कृति	9
V-	पूर्व-काव्यशास्त्रीय परम्परा का उल्लेख-उपयोग	11
VI-	तर्क-पद्धति	14
VII-	श्रृंगाररस का तीसरा भेद संयोगवियोग	18
VIII-	चित्रालंकार	25
IX-	हिन्दी-रीतिकवि मण्डन का प्रभाव	27
X-	सम्पादन-शैली	31
XI-	संकेत	37
XII-	मूलग्रन्थ	38
XIII-	प्रतीकानुक्रम	152
XIV-	शब्दकोश	161

निदेशकीयं

संस्कृत साहित्य के काव्यशास्त्र के अनुगामी रीति-कालीन काव्यशास्त्रियों ने अपने निबन्ध ग्रन्थों में आचार्य विश्वनाथ की तरह शब्दशक्ति, रस, अलंकार के अतिरिक्त नायक-नायिका भेद तथा उनकी विभिन्न अवस्थाओं के चित्रण को केन्द्र में रखा है । रीतिकालीन काव्य की तरह इस साहित्य पर भागवत-स्फूर्त तथा वल्लभकुल की कृष्णभक्ति के स्वरूप का पर्याप्त प्रभाव देखा जा सकता है । रीति-कालीन काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों में चूंकि मौलिक स्थापनाओं व नवीन मतों के प्रचार के लिए कोई विशेष प्रयास किये गये हों ऐसा दृष्टिगोचर नहीं होता है, इसलिए इन ग्रन्थों को कुछ सीमा तक काव्यग्रन्थ कहा जाय तो भी कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी जो कृष्ण के संयोग या विरह की स्वर-लहरियों से आप्लावित है । जयसिंह कृत काव्यरस को इसलिए काव्यशास्त्र के साथ रीतिकालीन काव्य के रूप में समझने में कोई संकोच नहीं होना चाहिए । लेखक ने वात्सल्य रस की विस्तार से चर्चा करते हुए संयोगवियोग के सम्बन्ध में मौलिक प्रतिपादन भी किया है ।

रीतिकालीन कवि मण्डने और जयगोविन्द वाजपेयी की रचनाओं के उद्धृत कुछ अंश ग्रन्थ के रचनाकाल को वि. 18वीं शती के उत्तरार्द्ध तक ले जाते हैं जो स्पष्टतः सवाई जयसिंह का काल है । इस सन्दर्भ में वचनप्रमाणभाषाग्रन्थ कृतिकार के निश्चय के लिए किंचित् सहायक हो सकता है । जयसिंह के चरित काव्य के रूप में प्रथित इस ग्रन्थ में संगीत के शास्त्रीय व प्रायोगिक दोनों ही क्षेत्रों में जयसिंह को निष्णात बताया गया है । यह काव्य जयसिंह के आश्रित गिरवरराम पारीक ने बनाया है । इधर काव्यरस जैसे काव्यशास्त्र के ग्रन्थ के अन्तिम भाग में अकस्माद् "राग विचार" शीर्षक में राग परिवार का चित्रण किया गया है जो इस संभावना का क्षीण ही सही, आधार बनता है कि कदाचिद् हमारे कृतिकार राजा जयसिंह जयपुर के ही सवाई जयसिंह हों ।

जो भी हो, काव्यशास्त्र के एक नवीन ग्रन्थ के रूप में काव्यरस समादृत होगा इस विश्वास के साथ यह ग्रन्थरत्न विद्वत् कर-कमलों में सौंप रही हूँ ।

वीना लाहोटी

आर.ए.एस.

निदेशक

राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर ।

निदेशकीय

संस्कृत साहित्य के काव्यशास्त्र के अनुगामी रीति-कालीन काव्यशास्त्रियों ने अपने निबन्ध ग्रन्थों में आचार्य विश्वनाथ की तरह शब्दशक्ति, रस, अलंकार के अतिरिक्त नायक-नायिका भेद तथा उनकी विभिन्न अवस्थाओं के चित्रण को केन्द्र में रखा है। रीतिकालीन काव्य की तरह इस साहित्य पर भागवत-स्फूर्त तथा वल्लभकुल की कृष्णभक्ति के स्वरूप का पर्याप्त प्रभाव देखा जा सकता है। रीति-कालीन काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों में चूंकि मौलिक स्थापनाओं व नवीन मतों के प्रचार के लिए कोई विशेष प्रयास किये गये हों ऐसा दृष्टिगोचर नहीं होता है, इसलिए इन ग्रन्थों को कुछ सीमा तक काव्यग्रन्थ कहा जाय तो भी कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी जो कृष्ण के संयोग या विरह की स्वर-लहरियों से आप्लावित है। जयसिंह कृत काव्यरस को इसलिए काव्यशास्त्र के साथ रीतिकालीन काव्य के रूप में समझने में कोई संकोच नहीं होना चाहिए। लेखक ने वात्सल्य रस की विस्तार से चर्चा करते हुए संयोगवियोग के सम्बन्ध में मौलिक प्रतिपादन भी किया है।

रीतिकालीन कवि मण्डने और जयगोविन्द वाजपेयी की रचनाओं के उद्धृत कुछ अंश ग्रन्थ के रचनाकाल को वि. 18वीं शती के उत्तरार्द्ध तक ले जाते हैं जो स्पष्टतः सवाई जयसिंह का काल है। इस सन्दर्भ में वचनप्रमाणभापाग्रन्थ कृतिकार के निश्चय के लिए किंचित् सहायक हो सकता है। जयसिंह के चरित काव्य के रूप में प्रथित इस ग्रन्थ में संगीत के शास्त्रीय व प्रायोगिक दोनों ही क्षेत्रों में जयसिंह को निष्णात बताया गया है। यह काव्य जयसिंह के आश्रित गिरवरराम पारीक ने बनाया है। इधर काव्यरस जैसे काव्यशास्त्र के ग्रन्थ के अन्तिम भाग में अकस्माद् "राग विचार" शीर्पक में राग परिवार का चित्रण किया गया है जो इस संभावना का क्षीण ही सही, आधार बनता है कि कदाचिद् हमारे कृतिकार राजा जयसिंह जयपुर के ही सवाई जयसिंह हों।

जो भी हो, काव्यशास्त्र के एक नवीन ग्रन्थ के रूप में काव्यरस समादृत होगा इस विश्वास के साथ यह ग्रन्थरत्न विद्वत् कर-कमलों में सौंप रही हूँ।

वीना लाहोटी
आर.ए.एस.
निदेशक
राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर।

प्राक्कथन

लगभग बीस वर्ष पूर्व राजा जयसिंह कृत काव्यरस के सम्बन्ध में पहली बार उस समय जानकारी मिली थी जब मैं काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र के निर्देशन में पी.-एच. डी. उपाधि के लिए रीतिकवि 'मण्डन' पर शोधकार्य कर रहा था । मण्डन की रचनाओं को खोजते हुए काशी-नागरी प्रचारिणी सभा की खोज में उपलब्ध हुए हस्तलिखित हिन्दी ग्रन्थों के विवरणों के पन्नों को पलटते हुए एक दिन मेरी दृष्टि सत्रहवें खोज विवरण में विवृत 'काव्यरस' पर रुकी । काव्यरस के विवरण में इस उल्लेख, कि इसमें मण्डन कृत 'रसरत्नावली' का एक दोहा उद्धृत हुआ है, के कारण काव्यरस मेरे लिए महत्वपूर्ण हो गया । खोज विवरण में मण्डन का दोहा भी उद्धृत किया गया था । खोज विवरण में विवृत प्रति के दिए गए प्राप्ति स्थान के पते पर मैंने पत्र लिखा पर कोई उत्तर नहीं मिला । दोबारा पत्र लिखने का भी कोई लाभ नहीं हुआ । तब मैं इस ग्रन्थ की अन्य प्रति की खोज में लगा । पर सफलता नहीं मिली । शोधकार्य तो पूरा हो गया, पी.-एच. डी. उपाधि भी मिल गयी पर, काव्यरस नहीं मिला ।

सन् 1984 में जोधपुर विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में अध्यापक होकर आ गया । एक दिन राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर में बैठा हुआ उसकी विभिन्न शाखाओं में सुरक्षित हस्तलिखित ग्रन्थों के प्रकाशित सूचीपत्र देख रहा था कि जयपुर शाखा के सूचीग्रन्थ में काव्यरस पर नजर पड़ी । उसके विवरण से ज्ञात हुआ कि वह प्रति खण्डित है (ज्ञातव्य है कि नागरी प्रचारिणी सभा की खोज में मिली प्रति भी खण्डित थी) फिर भी प्रति देखने की उत्सुकता बढ़ी । प्रयास करने पर उसकी फोटो कॉपी उपलब्ध हो गई देखने पर ग्रन्थ महत्वपूर्ण लगा । न केवल इसलिए कि उसमें मण्डन और उनके पुत्र जयगोविन्द वाजपेयी की कृतियों से छन्द उद्धृत हुए हैं बल्कि, इसलिए भी कि उसमें संस्कृत के भी अनेक काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों के अंश उद्धृत हुए हैं और कुछ नयी स्थापनाओं का प्रयास भी काव्यरस के कर्ता ने किया है । आवश्यकता महसूस हुई कि काव्यरस की कोई दूसरी और पूर्ण प्रति मिलनी चाहिए । एक दिन मालूम हुआ कि राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर में हस्तलेखों की प्रकाशित सूची में उल्लिखित ग्रन्थों के अतिरिक्त भी ग्रन्थ हैं जिनकी सूची अभी प्रकाशित नहीं हुई । अनुरोध करने पर हस्तलिखित ग्रन्थों की अप्रकाशित सूची (रजिस्टर) देखने को मिली । परिश्रम सार्थक हुआ । यहाँ भी काव्यरस की एक हस्तलिखित प्रति होने की जानकारी मिली । प्रति निकलवा कर देखी । पर यह प्रति भी खण्डित । आदि से भी और अन्त से भी ।

खोज चलती रही कि काव्यरस की कोई पूर्ण प्रति उपलब्ध हो । पर सफलता नहीं मिली । ग्रन्थ के महत्व को देखते हुए मैंने इसके सम्पादन का निर्णय

किया । सम्पादन के बाद प्रकाशन की समस्या आई । प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, ने प्रकाशन का उत्तरदायित्व स्वीकार किया और अब यह आपके हाथों में है ।

काव्यरस के प्रकाशन के इस अवसर पर मुझे सर्वप्रथम गुरुदेव स्वर्गीय आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र का स्मरण आता है जिनसे इस ग्रन्थ की जानकारी मिलने पर मैंने सबसे पहले चर्चा की थी और जिन्होंने काव्यरस की प्राप्ति हेतु निरन्तर प्रयासरत रहने की प्रेरणा दी थी । उनके जीवनकाल में तो यह प्राप्त नहीं हो सका था पर, अब न केवल प्राप्त, बल्कि प्रकाशित देखकर उनकी स्वर्गीय आत्मा सन्तुष्ट होगी । उन्हें शत-शत नमन ।

काव्यरस के अध्ययन-सम्पादन के रास्ते में आई कठिनाइयों के हल के लिए मुझे जिन विद्वानों से सहयोग प्राप्त हुआ है उनके प्रति शाब्दिक आभार प्रकट कर मैं उनसे उऋण नहीं हो सकता । यहाँ उनका नामोल्लेख या उनके प्रति आधार-प्रदर्शन का निमित्त सुधी पाठकों को यह बताना है कि मैं किन विद्वज्जनों का ऋणी हूँ । काव्यरस के अनेक स्थलों के पाठ एवं अर्थ-निर्धारण में मुझे प्राचीन काव्यमर्मज्ञ एवं समर्थ कवि डॉ. शक्तिदानजी कविया (सेवानिवृत्त, राजस्थानी विभाग, जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर) का महत्वपूर्ण सहयोग मिला है । मैं उनके प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ । काव्यरस के रचनाकार ने अपने मत के समर्थन में कहीं-कहीं पर संस्कृत-अंश उद्धृत किए हैं । ऐसे अनेक अंशों के स्पष्टीकरण में मुझे डॉ. श्रीकृष्णजी शर्मा (संस्कृत विभाग, जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर) की महती सहायता मिली है । मैं उनका हृदय से आभारी हूँ । विभागीय वरिष्ठ सहयोगी डॉ. पूर्णदासजी ने विचार-विमर्श के लिए अनेकशः अपना बहुमूल्य समय दिया है । उनके उपयोगी सुझावों से मैं बहुत अधिक लाभान्वित हुआ हूँ । उनके प्रति मैं हार्दिक आभार प्रकट करता हूँ ।

राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थों के संग्रह और सुरक्षा की दृष्टि से न केवल राजस्थान अपितु देश के कुंछ महत्वपूर्ण संस्थानों में से एक है । जहाँ इस प्रकार के कई दूसरे संस्थान प्राचीन ग्रन्थों को दबाकर बैठे रहने में ही अपनी कुशलता समझते हैं वहीं यह संस्थान शोधार्थियों को न केवल सहजतापूर्वक ग्रन्थ उपलब्ध कराता है बल्कि, उनके प्रकाशन में रुचि लेकर उन्हें सर्वसुलभ बनाता है । मैं राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर तथा उसकी जयपुर शाखा के अधिकारियों-कर्मचारियों का आभारी हूँ । सम्पादन में प्रयुक्त काव्यरस की दोनों हस्तलिखित प्रतियां 'प्रतिष्ठान' से ही उपलब्ध हुई हैं और इसका प्रकाशन भी इसी संस्थान के द्वारा किया जा रहा है ।

दिनांक 19-10-2001 ई. देवेन्द्र

कृतिकार

काव्यरस की जो दो हस्तलिखित प्रतियाँ हमें उपलब्ध हुई हैं वे दोनों आदि और अन्त से खण्डित हैं । हस्तलेखों के प्रारम्भ या अन्त में ही प्रायः कृति के निर्माता के सम्बन्ध में थोड़ी-बहुत जानकारी मिलने की सम्भावना रहती है । एक तीसरी हस्तलिखित प्रति, जिसका विवरण काशी नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट में है, भी आदि और अन्त से खण्डित है[1] । अतः उसमें भी कर्ता के सम्बन्ध में कोई जानकारी नहीं मिलती । छन्दों में कवि नाम-छाप 'जयसिंघ' है जिससे स्पष्ट होता है कि काव्यरस किन्हीं जयसिंह कृत है । इसके अतिरिक्त प्रत्येक अध्याय की समाप्ति-सूचक पंक्तियों में कर्ता का नाम निम्नलिखित रूप में उल्लिखित हुआ है:-

"इतिश्री राजा जयसिंघ बिरचिते काव्यरसे अर्थालंकार बर्ननं नाम नवमोध्यायः ॥"

यहाँ जिस रूप में नामोल्लेख हुआ है उसके आधार पर सामान्यतः कहा जा सकता है कि काव्यरस के रचनाकार जयसिंह 'राजा' थे । लेकिन, मध्यकाल में 'राजा' शब्द केवल शासकों के लिए ही प्रयुक्त नहीं होता था । यह शब्द उपाधि या पदवी के रूप में भी मिलता है । शासक जिन पर प्रसन्न होते थे, जिनकी योग्यता से प्रभावित होते थे उन्हें सम्मान-स्वरूप 'राजा' की उपाधि या पदवी से नवाजा करते थे । उदाहरण के लिए जयपुर के शासक सवाई जयसिंह ने अपने मन्त्री आयामल्ल को 'राजा' की उपाधि दी थी-

आयामल्ल अखंड तप जग सोहत जस ताहि ।
राजा कीनों करि कृपा महाराज जयसाहि ।।[2]

और वह राजा आयामल्ल कहे जाते थे -

लीला जुगलकिसोर की रस कौ होइ निकेतु ।
राजा आयामल्ल कौं ता कविता सौं हेतु ।।[3]

केवल राजनीतिज्ञों को ही नहीं, कवियों को भी यह उपाधि दी जाती थी । दिल्ली के बादशाह मुहम्मदशाह (शासनकाल संवत् 1776-1805 ने कवि जुगुलकिशोर ('अलंकारनिधि' के रचयिता) को 'राजा' की पदवी से नवाजा था-

---

1- खोज में उपलब्ध हस्तलिखित हिन्दी ग्रन्थों का सत्रहवाँ त्रैवार्षिक विवरण, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, पृष्ठ संख्या 221-223 ।

2- सरोज-सर्वेक्षण, डॉ. किशोरीलाल गुप्त, प्रथम संस्करण, पृष्ठ संख्या 178 ।

3. वही ।

ब्रह्मभट्ट हौं जाति को निपट अधीन नदान ।
राजा पद मोकौं दियो महमद साह सुजान ।।[1]

परन्तु, काव्यरस को 'राजा' उपाधिधारी किसी आश्रित कवि की रचना मानने की तुलना में यह मानना अधिक ठीक होगा कि वह किसी आश्रयदाता कवि की रचना है । क्योंकि, ग्रन्थ में आश्रयदाता के रूप में कहीं भी किसी नाम का उल्लेख नहीं मिलता । प्राय: सभी रीतिकवि किसी न किसी राज्याश्रय में रहकर काव्यरचना करते थे और ग्रन्थ में आश्रयदाता की प्रशस्ति से सम्बद्ध छन्दों की योजना करते थे । रस-निरूपण करने वाले आचार्य-कवि वीररस के उदाहरणों में तो प्राय: ऐसे ही छन्द रखते थे । लेकिन, काव्यरस में कहीं भी किसी राजा का न तो नामोल्लेख है और न प्रशंसा ही । जब रचनाकार स्वयं राजा हो, आश्रयदाता हो तब रचना में आश्रयदाता के रूप में किसी अन्य का उल्लेख या उसकी प्रशंसा कैसे हो सकती है ? अत: कह सकते हैं कि ग्रन्थ के रचयिता जयसिंह राजा थे, शासक थे ।

अब प्रश्न उठता है कि यह जयसिंह कौन थे ? और कहाँ के राजा थे ? जैसा कहा जा चुका है इस सम्बन्ध में उपलब्ध हस्तलेखों से कोई सहायता नहीं मिलती । हस्तलेखों में ग्रन्थ का रचनाकाल भी नहीं मिलता । रचनाकाल तो रचनाकाल, लिपिकाल भी नहीं मिलता । प्राय: ग्रन्थ के आदि या अन्त में ही रचनाकाल या लिपिकाल का उल्लेख होता है और उपलब्ध प्रतियों के वे अंश खण्डित हैं । यदि रचनाकाल मालूम हो तो इतिहास की सहायता से तत्सामयिक जयसिंह नामक राजा के साथ इसे सम्बद्ध किया जा सकता है ।

हम यहाँ कुछ अन्य सूत्रों से संभावित रचनाकाल निर्धारित करने का प्रयास कर रहे हैं । काव्यरस में जयगोविन्द वाजपेयी कृत 'कविसर्वस्व' नामक रीतिग्रन्थ से रस-लक्षण सम्बन्धी दोहे उद्धृत हुए हैं । 'कविसर्वस्व' अभी तक अप्रकाशित है । उसकी कोई हस्तलिखित प्रति भी हमें उपलब्ध नहीं हुई । 'कविसर्वस्व' की एक हस्तलिखित प्रति का विवरण नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट में है । उसकी पुष्पिका में ग्रन्थ का लिपिकाल संवत् 1765 दिया गया है-

"इतिश्री मत्पद वाक्य पारावारीण महामहोपाध्याय महामहिम महाकवि श्री मंडन तनयेन जयगोविन्देन वाजपेयिना विरचिते कविसर्वस्वे शब्दार्थोभयालंकार निरूपणो नाम दशम: परिच्छेद: ॥ 10॥ समाप्तोयं कविसर्वस्व नामा ग्रन्थ: संवत्

1-वही, पृष्ठ संख्या-299 ।

1765 वर्षे आसाढ़ मासे कृष्ण पक्षे सप्तमां तिथौ ॥ पतंगवासरे॥ गढ़पहरा मध्ये ॥'"[1]

चूँकि खोज रिपोर्ट में विवृत प्रति का लिपिकाल संवत् 1765 है इसलिए निश्चित है कि 'कविसर्वस्व' की रचना इससे पूर्व ही हुई होगी । 'कविसर्वस्व' के रचनाकार जयगोविन्द वाजपेयी कवि मण्डन के पुत्र हैं जिनका जीवनकाल हमने संवत् 1640 से 1730 वि. निर्धारित किया है ।[2] इसके आधार पर जयगोविन्द वाजपेयी का जन्म 1670 वि. के आसपास माना जा सकता है । कविसर्वस्व के सम्बन्ध में जो जानकारी मिलती है उससे वह एक प्रौढ़ रीतिग्रन्थ सिद्ध होता है । इस दृष्टि से उसका रचनाकाल 1715 वि. या उसके बाद माना जा सकता है । इसके आधार पर कहा जा सकता है कि काव्यरस की रचना संवत् 1715 के बाद ही हुई होगी ।

नागरीप्रचारिणी सभा के खोजकर्ता को काव्यरस की जो प्रति देखने को मिली थी उसके साथ एक ही हस्तलेख में लिपिबद्ध 'उपाचरित्र' नामक ग्रन्थ भी था जिसका लिपिकाल संवत् 1802 वि. लिखा था ।[3] एक साथ बद्ध एक ही हस्तलेख में लिपिबद्ध होने से अधिक सम्भावना यही है कि काव्यरस की विवृत प्रति का लिपिकाल भी संवत् 1802 वि. हो । इसके आधार पर कहा जा सकता है कि काव्यरस की रचना 1802 वि. से पूर्व हुई होगी ।

इस प्रकार यह निश्चय हो जाता है कि काव्यरस संवत् 1715 से 1802 के बीच कभी रचा गया होगा । वस्तुत: इस समय के आसपास होने वाले राजा जयसिंह ही काव्यरस के रचनाकार होंगे । उल्लेखनीय है कि काव्यरस की ज्ञात तीनों प्रतियाँ राजस्थान में मिली हैं । एक जोधपुर में, दूसरी जयपुर में तथा तीसरी डीग, भरतपुर में । इसे देखते हुए अधिक सम्भावना यही है कि काव्यरस के रचयिता जयसिंह का सम्बन्ध राजस्थान से हो । वह राजस्थान के ही किसी राज्य के राजा हों ।

राजस्थान के विभिन्न राज्यों के राजवंशों की सूची पर नजर डाली जाय तो इस नाम के अनेक राजा मिलते हैं ।[4] लेकिन यहाँ विक्रम की अठारहवीं शताब्दी के

1- खोज में उपलब्ध हस्तलिखित हिन्दी ग्रन्थों का सत्रहवाँ त्रैवार्षिक विवरण, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, पृष्ठ संख्या-220 ।

2- हिन्दी-रीतिकविता के परिप्रेक्ष्य में कवि मण्डन का अध्ययन, डॉ. देवेन्द्र, प्रथम संस्करण, पृष्ठ संख्या-23 ।

3-खोज में उपलब्ध हस्तलिखित हिन्दी ग्रन्थों का सत्रहवाँ त्रैवार्षिक विवरण, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, पृष्ठ संख्या- 221, 223 ।

4- राजस्थान का इतिहास, सुखबीर सिंह गहलोत, प्रथम संस्करण ।

जयसिंह नाम के राजा ही विचारणीय हो सकते हैं और इस दृष्टि से देखने पर कम से कम तीन राजा इस नाम के हुए हैं । अकेले आमेर (जयपुर) में इस दौरान जयसिंह नाम के दो शासक हुए हैं और एक मेवाड़ में ।

मेवाड़ के शासक महाराणा जयसिंह का शासनकाल संवत् 1737-1755 है ।[1] काव्यरस के सम्भावित रचनाकाल से इसका मेल बैठता है । पर, इन जयसिंह को काव्यरस का रचयिता मानने में कुछ बाधाएँ हैं-

1-काव्यरस की एक भी हस्तलिखित प्रति मेवाड़ क्षेत्र में नहीं मिली ।

2- मेवाड़ के जयसिंह स्वयं कविता करते थे इसका कोई अन्य प्रमाण नहीं मिलता ।

3- काव्यरस की सभी प्रतियों में रचयिता का नाम राजा जयसिंह मिलता है जबकि मेवाड़ के शासकों के नाम से पूर्व 'राजा' नहीं 'राणा' या 'महाराणा' लगता है यदि यह काव्यरस के रचयिता होते तो रचनाकार के नाम के रूप में 'राणा जयसिंह' या 'महाराणा जयसिंह' लिखा होता ।

काव्यरस के सम्भावित रचनाकाल (संवत् 1715 से 1802 वि.) के बीच आमेर (जयपुर) में जयसिंह नाम के दो राजा हुए । एक जयसिंह प्रथम (मिर्जा राजा) जिनका जीवनकाल संवत् 1668-1724 वि. है [2] और दूसरे जयसिंह द्वितीय (सवाई), जिनका जीवनकाल संवत् 1745-1800 वि. है ।[3] जयपुर के इन राजाओं के साथ काव्यरस को सम्बद्ध करने में निम्नलिखित सूत्रों की अनुकूलता उल्लेखनीय है-

1-काव्यरस में मण्डन कृत 'रसरत्नावली' से एक दोहा उद्धृत हुआ है । मण्डन मिर्जा राजा जयसिंह के दरबार में रहे ।[4]

2-काव्यरस में जयगोविन्द वाजपेयी कृत 'कविसर्वस्व' से भी कुछ दोहे उद्धृत हुए हैं । जयगोविन्द वाजपेयी कवि मण्डन के पुत्र हैं । जयगोविन्द वाजपेयी किस समय या किस राजा के शासनकाल में जयपुर राजदरबार में रहे, इसकी निश्चित जानकारी तो उपलब्ध नहीं है, लेकिन अनुमान लगाया जा सकता है कि जिस राज्य में उनके पिता ने मान-प्रतिष्ठा पाई हो वहाँ वह भी गये होंगे, रहे होंगे.।

---

1. राजस्थानी भाषा और साहित्य, पं. मोतीलाल मेनारिया, संवत् 2006, पृष्ठ संख्या 172-173 ।
2. राजपूताने का इतिहास (तृतीय भाग), जगदीश सिंह गहलोत, प्रथम संस्करण, पृष्ठ संख्या-80 ।
3. वही, पृष्ठ संख्या-92 ।
4. कविवर बिहारी, लेखक-स्वर्गीय श्री जगन्नाथदास 'रत्नाकर', सम्पादक श्री रामकृष्ण एम. ए., प्रथम संस्करण, पृष्ठसंख्या-376 ।

3-जयपुर के राजपुस्तकालय में मण्डन कृत 'रसरत्नावली' की हस्तलिखित प्रतियां प्राप्त हुई हैं ।[1]

4-जयपुर के राजपुस्तकालय में जयगोविन्द वाजपेयी कृत 'कविसर्वस्व' की तो कोई हस्तलिखित प्रति नहीं मिली लेकिन, उनकी एक अन्य रचना 'वृत्तकल्पलता' की एक हस्तलिखित प्रति मिली है ।[2]

लेकिन, जयपुर के इन दोनों राजाओं में से किसी को भी काव्यरस का रचनाकार मानने में एक प्रतिकूल तथ्य यह है कि इनमें से किसी के भी कविता करने के कोई अन्य प्रमाण नहीं मिलते । ये शासक काव्यप्रेमी थे, इनके यहां कवियों को आश्रय मिलता था, अनेक कवि इनके दरबारों की शोभा बढ़ाते थे, जहां इस बात के पर्याप्त प्रमाण हैं वहां ये शासक स्वयं कवि थे इस बात का कोई अन्य प्रमाण नहीं मिलता । हालांकि कहीं-कहीं पर दोनों शासकों के कविता करने या कवि होने की बातें कही गयी हैं पर, वे तथ्यों की कसौटी पर खरी नहीं उतरतीं । जैसे जयपुर राजपुस्तकालय की ग्रन्थ-सूची के सम्पादक श्रीगोपालनारायण बहुरा को पुस्तकालय में सुरक्षित हस्तलेखों में 17 दोहे ऐसे मिले जिनमें शीर्षक दिया हुआ है-'महाराज जयसिंहजी का बणाया दोहा' । आमेर (जयपुर) में जयसिंह नाम के तीन शासक हुए हैं । इस शीर्षक से यह स्पष्ट नहीं होता है कि यहां किन जयसिंह से तात्पर्य है । चूंकि ये दोहे सवाई माधोसिंह प्रथम (जीवनकाल सन् 1727-1768 ई.)[3] के गुरु भट्टराज सदाशिव के हस्तलिखित संग्रह में पाये गये हैं जिनका समय जयसिंह तृतीय (जीवनकाल सन् 1819-1835 ई.)[4] से पहले है, इसलिए विचारणीय प्रथम दो जयसिंह ही रह जाते हैं । बहुराजी ने इन दोहों के सम्बन्ध में सम्भावना व्यक्त की है कि ये दोहे मिर्जा राजा जयसिंह के बनाये हुये हो सकते हैं । उनके अनुसार-मिर्जा राजा जयसिंह को यद्यपि लेखक अथवा कवि होने का श्रेय तो नहीं मिला तथापि इसकी पूरी सम्भावना है कि उन्होंने अपने जीवन के प्रारम्भिक काल में निम्नलिखित 17 दोहे लिखे होंगे जो सवाई माधोसिंह प्रथम के गुरु भट्टराज सदाशिव के हस्तलिखित संग्रह में पाये गये हैं । यह सम्भावना इसलिए भी बलवती प्रतीत होती है, क्योंकि उनका सान्निध्य ब्रजभाषा के प्रसिद्ध

---

1. लिटरेरी हेरिटेज ऑफ द रूलर्स ऑफ आम्बेर एण्ड जयपुर, सम्पादक-गोपालनारायण बहुरा, प्रथम संस्करण, ग्रन्थसंख्या-3273, 3388 ।
2. वही, ग्रन्थसंख्या-795 ।
3. राजपूताने का इतिहास (तृतीय भाग), जगदीश सिंह गहलोत, प्रथम संस्करण, पृष्ठसंख्या-110, 114 ।
4. वही, पृष्ठ संख्या-137 ।

कवियों बिहारी और कुलपति से भी था । इस संग्रह के सम्बद्ध शीर्षक में भी इनके रचनाकार महाराज जयसिंह बताए गए हैं । ऐसा कोई प्रमाण नहीं मिलता जिसके द्वारा यह कहा जा सके कि सवाई जयसिंह ने कभी किसी काव्यकृति की रचना की होगी । प्रस्तुत दोहों की विषयवस्तु, शैली आदि पर बिहारी और कुलपति का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है । अत: यही सम्भावना बनती है कि इन दोहों की रचना का श्रेय मिर्जा राजा जयसिंह को ही दिया जाना चाहिए ।[1]

यद्यपि बहुराजी मिर्जा राजा जयसिंह को कवि तो सिद्ध नहीं कर रहे पर, इसे उनका आग्रह ही कहा जायेगा कि वह इन दोहों को मिर्जा राजा जयसिंह रचित मानते हैं । जहां तक उनके तर्कों का सवाल है वे उचित प्रतीत नहीं होते । यदि सवाई जयसिंह को इन दोहों का रचयिता इसलिए न माना जाय कि "ऐसा कोई प्रमाण नहीं मिलता कि सवाई जयसिंह ने कभी किसी काव्यकृति की रचना की होगी' तो मिर्जा राजा जयसिंह के सम्बन्ध में भी यही बात लागू होती है । स्वयं बहुराजी ही लिखते हैं 'मिर्जा राजा जयसिंह को यद्यपि लेखक अथवा कवि होने का श्रेय तो नहीं मिला ।' जहां तक इसलिए इन दोहों का सम्बन्ध मिर्जा राजा जयसिंह से माना जाय कि उनका सान्निध्य ब्रजभाषा के प्रसिद्ध कवियों से था तो इस बात के भी प्रमाण हैं कि सवाई जयसिंह भी ब्रजभाषा के अनेक कवियों के आश्रयदाता थे । उनका सान्निध्य भी ब्रजभाषा के कवियों से था । बहुराजी लिखते हैं कि 'प्रस्तुत दोहों की विषयवस्तु, शैली आदि पर बिहारी और कुलपति का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है ।' पर, इन दोहों पर बिहारी और कुलपति का प्रभाव भी उतना नहीं जान पड़ता जितना हिन्दी के एक अन्य रीतिकवि मण्डन का, जो बिहारी के समकालीन थे और बिहारी के समय में ही मिर्जा राजा जयसिंह के दरबार में थे । उदाहरण के लिए बहुराजी को 'महाराज जयसिंहजी का बणाया दोहा' शीर्षक से प्राप्त 17 दोहों में से तीन दोहे हम यहां उद्धृत कर रहे हैं-

नलिन मलिन किय नागरी तेरे लोचन लोल ।
अरु चकोर चेरे किए लिए ममोले मोल ॥

हिये कुआ सौं मन कलस डारि नजर सो डारि ।
नैना मेरे नागरी भरे हेंम सौं वारि ॥
नैना परखो नागरी तेरे तिरछे नैन ।
गूँगो ही समझै भले गूँगन की ज्यों सैंन ॥[2]

---

1. लिटरेरी हेरिटेज ऑफ द रूलर्स ऑफ आम्बेर एण्ड जयपुर, पृष्ठ संख्या-40 ।
2. लिटरेरी हेरिटेज ऑफ द रूलर्स ऑफ आम्बेर एण्ड जयपुर, पृष्ठ संख्या-41 ।

अब इन्हें मण्डन कृत 'नयनपचासा' के निम्नलिखित दोहों से मिलाइए-

नलिन मलिन किये नागरी, तेरे लोइन लोल।
अरु चकोर चेरे किये, लिये ममोले मोल॥

डीठि-डोर सों मन-कलस, काम-कुवा मैं डारि।
नैना तेरे नागरी, भरैं पेमरस-बारि॥

नैन पारखी नागरी, तुरँग रसीले नैन।
गूँगेई समुझैं भलें, गूँगे ही की सैन॥[1]

प्रथम तो ज्यों का त्यों है। शेप दो में केवल शब्दों का ही हेर-फेर है। इनके अतिरिक्त कुछ और दोहों में भी मण्डन के दोहों की छाया देखी जा सकती है। विशेप रूप से 'नागरी' सम्बोधन वाले दोहों में। मण्डन कृत 'नयनपचासा' के अधिकांश दोहों में 'नागरि' या 'नागरी' सम्बोधन प्रयुक्त हुआ है। खैर ! जो कुछ भी हो, जयपुर के राजपुस्तकालय (पोथीखाने) में मिले 17 दोहों के आधार पर किसी को कवि नहीं सिद्ध किया जा सकता।

दूसरी ओर हिन्दी साहित्य के प्रारम्भिक इतिहास-ग्रन्थों में जयसिंह द्वितीय का कवि रूप में उल्लेख हुआ है। गार्सां द तासी के 'इस्त्वार द ल लितरेत्यूर ऐंदूई ए ऐंदूस्तानी' में इनका उल्लेख इस प्रकार हुआ है-''जैसिंह-टॉड द्वारा 'एनल्स ऑव राजस्थान' में उल्लिखित एक प्रकार के ऐतिहासिक पत्र कल्पद्रुम के रचयिता हैं।''[2]

शिवसिंह सेंगर ने इनके सम्बन्ध में लिखा है-''जयसिंह कछवाहे महाराजै आमेर 1755। ये महाराज सर्व विद्या निधान कवि कोविदों के कल्पवृक्ष, महान कवि थे। आप ही अपना जीवन चरित्र लिखि उस ग्रन्थ का नाम जयसिंह कल्पद्रुम रखा है। यह ग्रन्थ अवश्य विद्वानों को दर्शनीय है।''[3] इस पर सरोज-सर्वेक्षणकार की टिप्पणी है-''जयसिंह सवाई द्वितीय जयपुर के वह प्रसिद्ध महाराज हैं जिन्होंने जयपुर नगर बसाया। इनका जन्म संवत् 1745 में हुआ था और देहावसान सं. 1800 में हुआ। यह संस्कृत, फारसी और ज्योतिप के बहुत बड़े विद्वान थे। कृष्ण भट्ट कवि कलानिधि और कृपाराम इन्हीं के आश्रय में थे। इनका शासन काल सं. 1756-1800 है। सरोज में दिया हुआ सं. 1755 शुद्ध है। यह उपस्थितकाल है।''[4]

---

1. मण्डन-ग्रन्थावली, सम्पादक-डॉ. देवेन्द्र, प्रथम संस्करण, पृष्ठसंख्या-136, 133, 134।
2. हिन्दुई साहित्य का इतिहास, अनुवादक-लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, प्रथम संस्करण, पृष्ठ संख्या-87।
3. शिवसिंह सरोज, सम्पादक-डॉ. किशोरीलाल गुप्त, प्रथम संस्करण, पृष्ठ संख्या-705।
4. सरोज-सर्वेक्षण, डॉ. किशोरीलाल गुप्त, प्रथम संस्करण, पृष्ठसंख्या-321।

लेकिन आगे के इतिहास-ग्रन्थ इस सम्बन्ध में मौन हैं । यही नहीं, जिस 'कल्पद्रुम' या 'जयसिंहकल्पद्रुम' नामक ग्रन्थ के आधार पर तासी और शिवसिंह ने जयसिंह का कवि-रूप में उल्लेख किया है वह 'जयसिंहकल्पद्रुम' ग्रन्थ रत्नाकर पौण्डरीकयाजी रचित है जो जयसिंह द्वितीय के शासनकाल संवत् 1770 वि. में लिखा गया । दूसरी महत्वपूर्ण बात यह है कि ग्रन्थ संस्कृत भाषा में है ।[1]

इस आधार पर तो जयसिंह द्वितीय के भी कवि होने की सम्भावना पूरी तरह समाप्त हो जाती है । जानने योग्य है कि सरोज सर्वेक्षणकार डॉ. किशोरीलाल गुप्त की पूर्व उद्धृत टिप्पणी से जयसिंह द्वितीय के सम्बन्ध में अनेक बातों की जानकारी मिलती है पर, उनके कविरूप के सम्बन्ध में वह कोई प्रकाश नहीं डालती ।

काव्यरस को जयपुर के शासकों के साथ सम्बद्ध करने में दूसरी बाधा यह भी है कि जयपुर के राजपुस्तकालय (पोथीखाना) में जहां बड़ी संख्या में हस्तलिखित ग्रन्थ मिले हैं वहां काव्यरस की एक भी प्रति नहीं मिली ।

राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान की जयपुर शाखा में संगृहीत राजस्थानी-हिन्दी हस्तलिखित ग्रन्थों की सूची (भाग-6) में काव्यरस के विवरण के अन्तर्गत इसके रचयिता का उल्लेख 'राजा जयसिंह पुत्र राजा उदयसिंह' के रूप में किया गया है । राजा जयसिंह को राजा उदयसिंह का पुत्र किस आधार पर लिखा गया है, यह स्पष्ट नहीं होता, क्योंकि हस्तलेख में इस प्रकार का कोई उल्लेख नहीं मिलता । वैसे जयपुर के राजपुस्तकालय की ग्रन्थ सूची में 'काव्यरहस्य' नामक एक रचना का उल्लेख मिलता है जिसके कर्ता 'जयसिंह पुत्र उदयसिंह' लिखे गए हैं । अन्तर केवल इतना है कि यहाँ नामों के साथ 'राजा' शब्द नहीं है । 'काव्यरहस्य' देखने को नहीं मिला ।

इस प्रकार काव्यरस के कर्ता राजा जयसिंह के सम्बन्ध में अभी कुछ कह पाना कठिन है । यदि भविष्य में काव्यरस की कोई पूर्ण प्रति मिले और उसमें कवि के सम्बन्ध में कोई जानकारी हो, या फिर किसी अन्य स्रोत से तथ्यात्मक जानकारी मिले तभी निश्चित रूप से कुछ कह पाना सम्भव होगा ।

---

1. लिटरेरी हेरिटेज ऑफ द रूलर्स ऑफ आम्बेर एण्ड जयपुर, पृष्ठ संख्या-35, 257 ।

कृति

राजा जयसिंह कृत काव्यरस रीतिग्रन्थ है । रीतिकालीन लक्षण-ग्रन्थों के वर्गीकरण की दृष्टि से यह विविध काव्यांग निरूपक अथवा विविधांग निरूपक ग्रन्थ है । इसकी जो हस्तलिखित प्रतियाँ उपलब्ध हुई हैं वे आदि और अन्त से खण्डित हैं । एक प्रति का प्रारम्भिक अंश प्रथम अध्याय की समाप्ति-सूचक पंक्तियाँ हैं जिनमें इस अध्याय की विषय-वस्तु का निर्देश भी है । क्रमशः नौ अध्यायों की समाप्ति के पश्चात् ऋतुवर्णन है और तत्पश्चात् 'रागविचार' शीर्षक से संगीत के विभिन्न रागों का परिचय आदि है । दूसरी हस्तलिखित प्रति जहां तक मिली है उससे ऐसा लगता है कि 'रागविचार' इस ग्रन्थ का अन्तिम हिस्सा है । आगे दो एक पन्ने ही और रहे होंगे । नवें अध्याय की समाप्ति के बाद यदि ऋतुवर्णन और रागविचार को दसवाँ अध्याय मान लें तो काव्यरस ग्रन्थ कुल दस अध्यायों में विभक्त है । इन दस अध्यायों में विवेचित विषय इस प्रकार हैं-

पहला अध्याय	-	गणविचार तथा रसनिरूपण
दूसरा अध्याय	-	नायकभेद, नायिका (स्वकीया) भेद
तीसरा अध्याय	-	धीरादिभेद, ज्येष्ठा-कनिष्ठा, परकीया, स्वयंदूतिका, उपपति, सामान्या, वैशिक वर्णन
चौथा अध्याय	-	यौवन उमंग, दस नायिका, गर्वितादि, मानी नायक, जाति अनुसार नायिका भेद, सखी, परिहास वर्णन
पाँचवाँ अध्याय	-	दूतीभेद, नायक-नायिका के षोडशश्रृंगार, नायिका के द्वादश आभरण, अन्यसंभोगदु:खिता, अनुराग, दर्शन, मान, उलाहना, शिक्षा, प्रोषित नायक वर्णन
छठा अध्याय	-	भाव, हाव, हेलादि निरूपण
सातवाँ अध्याय	-	वात्सल्य सहित दस रस निरूपण
आठवाँ अध्याय	-	शब्दालंकार वर्णन
नवाँ अध्याय	-	अर्थालंकार तथा चित्रालंकार वर्णन
दसवाँ अध्याय	-	ऋतुवर्णन तथा रागविचार

काव्यरस की एक हस्तलिखित प्रति, जो आदि से कम खण्डित है, के उपलब्ध प्रथम छन्द की संख्या 40 है । यदि पूर्व के छन्दों की क्रम संख्या में कोई गड़बड़ी न रही हो तो कहना चाहिए कि प्रारम्भ में 39 छन्द और रहे होंगे । इसी प्रकार दूसरी हस्तलिखित प्रति, जो अन्त से कम खण्डित है, की अन्तिम छन्द संख्या 15 (515) है जो वस्तुतः 521 होनी चाहिए । क्रमांक बीच में गड़बड़ हुए हैं । इस प्रकार कुल 482 छन्द उपलब्ध हैं । इनमें प्रारम्भ के 39 छन्द जोड़ दिए जायँ तो कुल संख्या 521 होती है । यदि यह अनुमान ठीक हो कि 'रागविचार' इस कृति का अन्तिम विपय रहा होगा और जहां तक हस्तलिखित प्रति उपलब्ध है उसके बाद बहुत थोड़े छन्द ही रहे होंगे तो कहा जा सकता है कि लगभग सवा पाँच सौ छन्दों की यह कृति है ।

चूँकि उपलब्ध हस्तलेख आदि और अन्त से खण्डित हैं इसलिए कृति का नाम न तो आरम्भ में मिलता है न अन्त में । कृति के भीतर प्रत्येक अध्याय की समाप्ति-सूचक पंक्तियों में आये कृति के नाम के आधार पर ही यह जानकारी मिलती है कि इसका नाम काव्यरस है । उदाहरणार्थ-''इति श्री राजा जयसिंघ बिरचिते काव्यरसे नाइक नाइका अवस्था बर्ननं नाम द्वितीयोध्यायः।''

कृति के नाम से ऐसा आभास होता है कि यह केवल रसों पर आधारित या केवल रस-विवेचन करने वाली कृति होनी चाहिए । पर ऐसा नहीं है । ग्रन्थ में गण-विचार भी है और अलंकार-निरूपण भी । ऋतुवर्णन भी है और रागविचार भी । यह अवश्य है कि अन्य विपयों की तुलना में रस को सर्वाधिक महत्व मिला है । कुल दस अध्यायों में से दूसरा, तीसरा, चौथा, पाँचवाँ, छठा और सातवाँ (कुल छह) अध्याय तो पूरे के पूरे रस से सम्बद्ध हैं । इनके अलावा पहले अध्याय में भी गण-विचार के साथ रस-निरूपण है । अलंकार को दो अध्याय मिले हैं । रसों में भी श्रृंगाररस को विशेष महत्व मिला है । श्रृंगार के आलम्बन नायक-नायिका भेदों का विस्तार से वर्णन है । सखी, दूती के साथ नायक-नायिका के पोडश श्रृंगार, नायिका के द्वादश आभरण, अनुराग, दर्शन, मान, उलाहना, शिक्षा आदि का भी निरूपण है । नायिकाओं के यौवनालंकार-भाव, हाव, हेलादि को पूरा एक अध्याय मिला है । इस प्रकार दूसरे से लेकर छठे अध्याय तक केवल नायक-नायिका सम्बन्धी विवेचन-विश्लेपण है । स्पष्ट है कि श्रृंगार के अन्तर्गत भी नायक-नायिका को विशेष महत्व मिला है । नायक-नायिका में भी नायिका की स्थिति महत्वपूर्ण है । श्रृंगार के शेष पक्षों और अन्य रसों को सातवें अध्याय में निबटा दिया गया है ।

अलंकार सम्बन्धी दो अध्यायों में से एक में शब्दालंकारों का तथा दूसरे में अर्थालंकारों का निरूपण है । दोनों अध्यायों में चित्रालंकार भी हैं । 'ऋतुवर्णन' शीर्षक से सभी छह ऋतुओं का छप्पय छन्द में वर्णन है । वर्षा ऋतु को छोड़कर, जिसका वर्णन दो छन्दों में हुआ है, शेष सभी ऋतुएं एक-एक छन्द में वर्णित हैं । इस प्रकार ऋतुवर्णन-सम्बन्धी कुल सात छन्द हैं । रागविचार के अन्तर्गत पहले 'नाद' को स्पष्ट किया गया है । तदनन्तर सप्त स्वरों का वर्णन है । इसके पश्चात् प्रत्येक राग की रागिनी, पुत्र, पुत्री, उपराग आदि का एक-एक छप्पय छन्द में वर्णन है । तत्पश्चात् सभी छह रागों के अधिष्ठातृ देव कौन-कौन हैं, यह दोहों में बतलाया गया है । इसके बाद प्रति खण्डित है ।

पूर्व-काव्यशास्त्रीय परम्परा का उल्लेख-उपयोग

कवि-आचार्य जयसिंह ने अपनी कृति काव्यरस में जो शास्त्रीय विवेचन प्रस्तुत किया है वह प्राय: परम्परागत है । काव्यरस को देखने पर जो एक बात स्पष्ट रूप से सामने आती है वह यह कि इन्होंने संस्कृत के अनेक काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों का अध्ययन-अनुशीलन किया था । हिन्दी की पूर्ववर्ती रीतिशास्त्रीय परम्परा से भी यह भलीभांति परिचित थे । जयसिंह ने स्वयं ही अनेक बार यह कहा है कि वह शास्त्रीय निरूपण (पूर्व-काव्यशास्त्रीय) ग्रन्थों को देख-समझकर या उनके आधार पर कर रहे हैं । उदाहरणार्थ नायक का लक्षण-निरूपण करते हुए वह लिखते हैं:-

'जयसिंघ' येते गुन नाइकु कहावै सोई

ग्रंथनि निहारि कबि बरनौ कबित मै ॥

इसी प्रकार मुग्धा नायिका के भेद निरूपित करते हुए वह कहते हैं:-

प्रथम कहौ द्वै भांति सौ जोबन कौ निरधार ।

इक अज्ञातजोवन कहै ग्रंथनि मै जु बिचार ॥

अष्टनायिकाओं के विवेचन-प्रसंग में वह फिर स्वीकार करते हैं कि यह विवेचन मैं पूर्व-काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों के आधार पर कर रहा हूँ:-

जे बरनी है नाइका आठ भाँति ते जान ।

सो प्रकार अब कहत हौ ग्रंथनि के उनमान ॥

काव्यरस की एक हस्तलिखित प्रति, जो आदि से कम खण्डित है, के उपलब्ध प्रथम छन्द की संख्या 40 है। यदि पूर्व के छन्दों की क्रम संख्या में कोई गड़बड़ी न रही हो तो कहना चाहिए कि प्रारम्भ में 39 छन्द और रहे होंगे। इसी प्रकार दूसरी हस्तलिखित प्रति, जो अन्त से कम खण्डित है, की अन्तिम छन्द संख्या 15 (515) है जो वस्तुत: 521 होनी चाहिए। क्रमांक बीच में गड़बड़ हुए हैं। इस प्रकार कुल 482 छन्द उपलब्ध हैं। इनमें प्रारम्भ के 39 छन्द जोड़ दिए जायँ तो कुल संख्या 521 होती है। यदि यह अनुमान ठीक हो कि 'रागविचार' इस कृति का अन्तिम विषय रहा होगा और जहां तक हस्तलिखित प्रति उपलब्ध है उसके बाद बहुत थोड़े छन्द ही रहे होंगे तो कहा जा सकता है कि लगभग सवा पाँच सौ छन्दों की यह कृति है।

चूँकि उपलब्ध हस्तलेख आदि और अन्त से खण्डित हैं इसलिए कृति का नाम न तो आरम्भ में मिलता है न अन्त में। कृति के भीतर प्रत्येक अध्याय की समाप्ति-सूचक पंक्तियों में आये कृति के नाम के आधार पर ही यह जानकारी मिलती है कि इसका नाम काव्यरस है। उदाहरणार्थ-''इति श्री राजा जयसिंघ बिरचिते काव्यरसे नाइक नाइका अवस्था बर्ननं नाम द्वितीयोध्याय:।''

कृति के नाम से ऐसा आभास होता है कि यह केवल रसों पर आधारित या केवल रस-विवेचन करने वाली कृति होनी चाहिए। पर ऐसा नहीं है। ग्रन्थ में गण-विचार भी है और अलंकार-निरूपण भी। ऋतुवर्णन भी है और रागविचार भी। यह अवश्य है कि अन्य विषयों की तुलना में रस को सर्वाधिक महत्व मिला है। कुल दस अध्यायों में से दूसरा, तीसरा, चौथा, पाँचवाँ, छठा और सातवाँ (कुल छह) अध्याय तो पूरे के पूरे रस से सम्बद्ध हैं। इनके अलावा पहले अध्याय में भी गण-विचार के साथ रस-निरूपण है। अलंकार को दो अध्याय मिले हैं। रसों में भी शृंगाररस को विशेष महत्व मिला है। शृंगार के आलम्बन नायक-नायिका भेदों का विस्तार से वर्णन है। सखी, दूती के साथ नायक-नायिका के षोडश शृंगार, नायिका के द्वादश आभरण, अनुराग, दर्शन, मान, उलाहना, शिक्षा आदि का भी निरूपण है। नायिकाओं के यौवनालंकार-भाव, हाव, हेलादि को पूरा एक अध्याय मिला है। इस प्रकार दूसरे से लेकर छठे अध्याय तक केवल नायक-नायिका सम्बन्धी विवेचन-विश्लेषण है। स्पष्ट है कि शृंगार के अन्तर्गत भी नायक-नायिका को विशेष महत्व मिला है। नायक-नायिका में भी नायिका की स्थिति महत्वपूर्ण है। शृंगार के शेष पक्षों और अन्य रसों को सातवें अध्याय में निबटा दिया गया है।

अलंकार सम्बन्धी दो अध्यायों में से एक में शब्दालंकारों का तथा दूसरे में अर्थालंकारों का निरूपण है । दोनों अध्यायों में चित्रालंकार भी हैं । 'ऋतुवर्णन' शीर्षक से सभी छह ऋतुओं का छप्पय छन्द में वर्णन है । वर्षा ऋतु को छोड़कर, जिसका वर्णन दो छन्दों में हुआ है, शेष सभी ऋतुएं एक-एक छन्द में वर्णित हैं । इस प्रकार ऋतुवर्णन-सम्बन्धी कुल सात छन्द हैं । रागविचार के अन्तर्गत पहले 'नाद' को स्पष्ट किया गया है । तदनन्तर सप्त स्वरों का वर्णन है । इसके पश्चात् प्रत्येक राग की रागिनी, पुत्र, पुत्री, उपराग आदि का एक-एक छप्पय छन्द में वर्णन है । तत्पश्चात् सभी छह रागों के अधिष्ठातृ देव कौन-कौन हैं, यह दोहों में बतलाया गया है । इसके बाद प्रति खण्डित है ।

पूर्व-काव्यशास्त्रीय परम्परा का उल्लेख-उपयोग

कवि-आचार्य जयसिंह ने अपनी कृति काव्यरस में जो शास्त्रीय विवेचन प्रस्तुत किया है वह प्राय: परम्परागत है । काव्यरस को देखने पर जो एक बात स्पष्ट रूप से सामने आती है वह यह कि इन्होंने संस्कृत के अनेक काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों का अध्ययन-अनुशीलन किया था । हिन्दी की पूर्ववर्ती रीतिशास्त्रीय परम्परा से भी यह भलीभांति परिचित थे । जयसिंह ने स्वयं ही अनेक बार यह कहा है कि वह शास्त्रीय निरूपण (पूर्व-काव्यशास्त्रीय) ग्रन्थों को देख-समझकर या उनके आधार पर कर रहे हैं । उदाहरणार्थ नायक का लक्षण-निरूपण करते हुए वह लिखते हैं:-

'जयसिंघ' येते गुन नाइकु कहावै सोई

ग्रंथनि निहारि कबि बरनौ कबित मै ॥

इसी प्रकार मुग्धा नायिका के भेद निरूपित करते हुए वह कहते हैं:-

प्रथम कहौ द्वै भांति सौ जोबन कौ निरधार ।

इक अज्ञातजोबन कहै ग्रंथनि मै जु बिचार ॥

अष्टनायिकाओं के विवेचन-प्रसंग में वह फिर स्वीकार करते हैं कि यह विवेचन मैं पूर्व-काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों के आधार पर कर रहा हूँ:-

जे बरनी है नाइका आठ भाँति ते जान ।

सो प्रकार अब कहत हौ ग्रंथनि के उनमान ॥

प्रोषितपतिका नायिका का लक्षण निरूपित करते हुए भी उनका कहना है कि यह लक्षण पूर्व-ग्रन्थों पर आधारित है:-

पीउ गयौ जब दूरि कौ दुख्खु तहाँ मन होइ ।

प्रोषितपतिका नाइका ग्रंथनि कहिए जोइ ॥

मध्यम दूती का लक्षण देते हुए जयसिंह उसे पूर्ववर्ती कवियों (आचार्यों) द्वारा मान्य लक्षण कहते हैं-

बातैं थोरी कहि करै प्रीति रीति रुचि काज ।

तासों मध्यम दूतिका कहत सबै कबिराज ॥

नायक-नायिका के षोडश शृंगार का वर्णन करते हुए भी वह इन्हें पूर्व-ग्रन्थाधारित कहते हैं । इसी प्रकार भाव, हाव, हेला आदि का लक्षण निरूपित करते हुए भी वह ग्रन्थों के मत की बात कहते हैं । रौद्र रस का लक्षण भी पूर्व-ग्रन्थानुसार बताते हैं । अलंकारों का वर्णन करते हुए भी जयसिंह ने ग्रन्थ-पुरम्परानुसार वर्णन करने की बात कही है-

अलंकार अब कहतु हौ ग्रंथनि रीति डिठाउ ।

उपमेयोपमा, तद्गुण आदि अलंकारों के लक्षणों को भी पूर्व-ग्रन्थानुसार बताया गया है ।

यही नहीं, संस्कृत के अनेक आचार्यों अथवा काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों का स्पष्ट नामोल्लेख भी जयसिंह ने काव्यरस में किया है । अष्टनायिका-वर्णन के प्रसंग में वह भरतमुनि और भानुदत्त का उल्लेख इस रूप में करते हैं-

कही है प्रमान अष्टनाइका भरतमुनि

भानदत्त कही रसमंजरी बनाइ कै ।

भानुदत्त का उल्लेख इससे पूर्व भी हुआ है-

नवी नाइका है कही भानदत्त निरधारि ।

प्रवत्सभर्त्तिका नाउ धरि काद्यौ भेदु बिचारि ॥

भानुदत्त कृत 'रसमंजरी' का उल्लेख तो ऊपर हो ही चुका है । विश्वनाथ कृत 'साहित्यदर्पण' का उल्लेख भी वत्सल रस के प्रसंग में जयसिंह ने किया है-

साहित सु दर्पन कौ मतु पुनि 'जयसिंघ'

यातें दस रस जानि परत बिचारि कै ।

काव्यरसकार ने स्पष्टतः स्वीकार किया है कि उसका अलंकार-विवेचन 'काव्यप्रकाश' (मम्मट कृत) पर आधारित है-

अलंकार बरननु कर्‌यौ काव्यप्रकास जु रीति ।

निजु कै जबहीं समुझि हौ जबै होइ यामें प्रीति ॥

न केवल आचार्यों और ग्रन्थों का नामोल्लेख किया गया है, बल्कि जहाँ आवश्यकता समझी गयी है इनके गद्यांश-पद्यांश उद्धृत किए गए हैं । जैसे रस लक्षण के सन्दर्भ में नामोल्लेख किए बिना काव्यप्रकाशकार का रस-लक्षण उद्धृत किया गया है-

कारणान्यथ कार्याणि सहकारीणि यानि च ।

रत्यादेः स्थायिनो लोके तानि चेन्नाट्यकाव्ययोः ॥

विभावा अनुभावास्तत् कथ्यन्ते व्यभिचारिणः ।

व्यक्तः स तैर्विभावाद्यैः स्थायीभावो रसः स्मृतः ॥

इसी प्रकार एक अन्य संस्कृत-अंश जयसिंह ने उद्धृत किया है-

चिदानन्दस्वरूपसाक्षात्कारो रसः । आनन्दांशे भग्नावरणतया आनन्दरूपतया प्रकाशमानं रत्याद्यवछिन्नचैतन्यं रसः । रसनीयत्वेनेति रसनामास्वादो निरतिशय सुखरूपता । चर्व्यमाणतैक प्राण इति । चर्वणा चानन्दाभिव्यक्तिः । स्वादः काव्यार्थसंभेदादात्मानन्द-समुद्भव इति ।

विरुद्धो अविरुद्धो वा यं तिरोधातुमक्षमाः ।

आनन्दांकुरकन्दोऽसौ भावः स्थायियदास्पदम् ॥

वत्सल रस के प्रसंग में साहित्यदर्पणकार निरूपित लक्षण काव्यरस में उद्धृत हुआ है-

स्फुटं चमत्कारितया वत्सलं च रसं विदुः ।

स्थायी वत्सलता स्नेहः पुत्राद्यालम्बनं मतम् ॥

उद्दीपनानि तच्चेष्टा विद्याशौर्यदयादयः ।

आलिंगनांगसंस्पर्श शिरश्चुम्बनमीक्षणम् ॥

पुलकानन्दवाष्पाद्या अनुभावाः प्रकीर्तिताः ।

संचारिणोऽनिष्टशंकाहर्पगर्वादयो मताः ॥

पद्मगर्भच्छविवर्णो दैवतं लोकमातरः ।

संस्कृत के ही नहीं, हिन्दी के भी दो कवि-आचार्यों के रस-लक्षण सम्बन्धी दोहे काव्यरस में उद्धृत हुए हैं। मण्डन कृत 'रसरत्नावली' का दोहा इस प्रकार है-

कबित सुनें नाटक सुनें हिय में हर्पु जु होइ ।

'मंडन' तासों रस कहें रीझि रहै मन भोइ ॥

जयगोविन्द वाजपेयी कृत 'कविसर्वस्व' से निम्नलिखित तीन दोहे उद्धृत हैं-

कारन कारज जे जगह सहकारी समुदाइ ।

रत्यादिक थाईनि के कबित नृत्त में आइ ॥

ते बिभाउ अनुभाउ अरु ह्वै बिभचारी भाउ ।

प्रगटहि थाइनि सहित हीं आनँद कै भरियाउ ॥

ताही सों रस कहत है जो उपजै इहि भांति ।

कबिबर बरनै ग्रंथ में अति हीं बाढ़ै कांति ॥

तर्क-पद्धति

काव्यरस के कर्ता की एक उल्लेखनीय विशेपता यह है कि वह परम्परा से हटकर जब कोई नई बात कहता है अथवा पूर्व स्थापित वे मान्यताएँ जो सर्वमान्य नहीं हो सकीं और काव्यरस का कर्ता उनका समर्थन करता है तब वह तर्कपूर्ण ढंग

से अपना पक्ष रखता है । जयसिंह की मान्यताओं से या उनके तर्कों से सर्वत्र सहमत हुआ ही जाय यह आवश्यक नहीं है । वह अपनी बात तर्कों के माध्यम से कहते हैं, अपने पक्ष के समर्थन में तर्क देते हैं, यह महत्वपूर्ण है ।

अवस्था (दशा) भेद के अनुसार नायिकाभेद विवेचन के प्रसंग में परम्परागत अष्ट नायिकाओं के साथ जयसिंह ने भानुदत्त निरूपित प्रवत्स्यत्‌भर्तृका को भी स्वीकार किया है । लेकिन यहीं नहीं रुके, इस संख्या को दस तक पहुँचाते हुए उन्होंने आगच्छतपतिका नायिका की स्थापना की । अपनी मान्यता के समर्थन में उन्होंने तर्क दिया कि यदि जिस नायिका का पति अभी विदेश न गया हो, जाने वाला हो, इस आधार पर प्रवत्स्यत्‌भर्तृका नायिका मानी जा सकती है तो जिस नायिका का पति विदेश से अभी घर न लौटा हो, आने वाला हो, इस आधार पर एक और नायिका क्यों नहीं मानी जा सकती –

कही है प्रमान अष्टनाइका भरतमुनि

भानदत्त कही रसमंजरी बनाइ कै ।

पीउ चलिबे कों होइ जाकौ परदेस कौं

नवीं प्रवत्सभर्तिका दई है सो गनाइ कै ।

आइ चुक्यौ नही घर आवत सुन्यौ है कंतु

दसई कहत 'जयसिंघ' समुझाइ कै ।

आगछतपतिका कहावै इन रीतिनि सों

नवी मानौ त्योंही दई दसई जनाइ कै ॥

इसी प्रकार श्रृंगार रस के परम्परागत संयोग और वियोग भेदों के अतिरिक्त एक और तीसरा भेद मानने के पक्ष में उन्होंने तर्क दिया कि जैसे नायिका के धीरा और अधीरा भेदों के साथ एक तीसरा भेद धीराधीरा होता है वेसे ही श्रृंगाररस के संयोग और वियोग भेदों के साथ एक तीसरा भेद 'संयोगवियोग' भी माना जाना चाहिए–

ज्यों धीराधीरा यहै भेदु तीसरौ होइ ।

त्यों संजोगबियोग पुनि जानि लेउ सब कोइ ॥

साहित्यदर्पण में विश्वनाथ निरूपित वत्सलरस को जयसिंह दसवाँ रस मानने के पक्ष में हैं । लेकिन, उन्होंने नवरसों के विवेचन के पश्चात् सीधे-सीधे वत्सल का लक्षण-उदाहरण देकर काम चलता नहीं किया, जैसाकि कुछ अन्य रीतिकालीन कवि-आचार्यों ने किया है । उन्होंने अनेक तर्क देकर यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि वत्सल को भी रस मानना चाहिए-

करर्‌यौ है बिचारु कैऊ ग्रंथनि में रसु कहौ
कहे तें है कहा आइ थपौ निरधारि कै ।

जातें जीउ सुखु पावै रसु यहै ठहरायौ
पुनि नऊ रस तहाँ कहे निरवारि कै ।

घिनि हू सों रसु कहै तातें यौ अधिक रसु
सुत की कलोल सुख बहुत सिहाइ कै ।

साहित सु दर्पन कौ मतु पुनि 'जयसिंघ'
यातें दस रस जानि परत बिचारि कै ॥

इसी क्रम में आगे फिर कहते हैं-

नर अरु पसु पंछीनि मै सुत के सुख कौ रोचु ।
ए बत्सल रस लहत है करिं देखौ जिय सोचु ॥

बंधु बंधु की प्रीति जो तासों कहियतु भाउ ।
बत्सल रस सुत सुख कहै जाहि सुनत चित चाउ ॥

मित्र मिलै जौ सुखु रहै रसु राख्यौ नित आइ ।
दुख सों सब अनरस कहै प्रगटहि देतु बताइ ॥

इस प्रकार वत्सलरस के तर्कपूर्ण समर्थन के पश्चात् ही उन्होंने उसका लक्षण निरूपित किया और उदाहरण द्वारा उसे स्पष्ट किया । फिर भी सन्तोप नहीं हुआ और फिर लिखा-

नव रस मानत है तहाँ यह सक होति
घिनि माँझ कहौ कौन ठौर मोदु लहिए ।

बालक की बातनि तें नीकौ रसु होतु आनि
तिह कौ न जानै जाके सुनत उमहिए ।

रसु कह्यौ यातें जातें जीउ सुनि सुखु पावै
आवति बिचारि यहै दस रस चहिए ।

'जयसिंघ' मोहन खिलायें तात मात, बात
बत्सल सु रस हू की कहाँ लगि कहिए ॥

यही नहीं, उन्होंने शृंगार, रौद्र और शान्त को छोड़कर बालक के साथ सात रसों को सम्बंद्ध किया है-

बातै कहि तोतरीं बढ़ावतु है हास रस
बतसल उपजावै खेलनि में अबही ।

अचिरजु बैन अदभुत कौ जनावै तहाँ
होतु है करुन आनि बिरझत जबहीं ।

उतसाह महा गोद लेत तहाँ 'जयसिंघ'
बीभत्स है यातें लार होत जात तबहीं ।

कछू डरवाएं तें भयानक प्रगट होतु
सात रस बालक में बूझि देखौ सबही ॥

वत्सलरस का समर्थन करते हुए उन्होंने बार-बार रस को स्पष्ट किया है, रस किसे कहते हैं, यह समझाया है-जातें जीउ सुखु पावै रसु यहै ठहरायौं तथा रसु कह्यौ यातें जातें जीउ सुनि सुखु पावै । अपने इन रस-लक्षणों के प्रमाण स्वरूप उन्होंने संस्कृत-हिन्दी के अनेक आचार्य-कवियों के रस-लक्षण भी उद्धृत किए हैं ।

हिन्दी-रीतिशास्त्र में तर्क-शैली का प्राय: अभाव दिखाई पड़ता है जबकि शास्त्रीय निरूपण का यह अनिवार्य तत्व है । काव्यरस में इस शैली का प्रयोग (भले ही बहुत अधिक न सही) हिन्दी-रीतिग्रन्थों में उसे वैशिष्ट्य प्रदान करता है ।

शृंगाररस का तीसरा भेद संयोगवियोग

शृंगाररस के विवेचन के प्रसंग में जयसिंह ने उसके परम्परागत दो भेदों का उल्लेख करते हुए एक और भेद भी किया है-

दो बिधि कौ सिंगार रसु बरन्यौ है सब ठौर।

तीजौ भेदु बिचारि कै प्रगट कर्‌यौ यह और ॥

उनके अनुसार जैसे धीरा और अधीरा नायिकाओं के साथ तीसरी धीराधीरा नायिका होती है वैसे ही संयोग और वियोग के साथ एक तीसरा भेद 'संयोगवियोग' भी माना जाना चाहिए-

ज्यों धीराधीरा यहै भेदु तीसरौ होइ ।

त्यों संजोगबियोग पुनि जानि लेउ सब कोइ ॥

'संयोगवियोग' का लक्षण-निरूपण उन्होंने इस प्रकार किया है-

एक नगर कै धाम में प्रीति चाह हो कंत ।

कैंहूँ मिलनु बनै नहीं बिरहु बढ़ै अतिवंत ॥

अर्थात् एक ही नगर या एक ही घर में रहते हुए नायक-नायिका की मिलने की इच्छा पूरी न होना 'संयोगवियोग' है ।

उदाहरण में कवि ने एक ही घर में रहते हुए रीति-नीतिवश, परिवार के बड़े-बुजुर्गों की लज्जादि के कारण मिल न पाने से उत्पन्न नवविवाहित नायक-नायिका की विरह-व्याकुलता का वर्णन किया है-

गोनें आयें तहाँ अति भयो है नवल नेहु

भेंटन कों अकुलाइ बनतु न कैंहूँ है ।

और ही सों बात कहि उनकौ सुनायौ चाहें

श्रवन में परै सु जतनु करे तेंहू है ।

गुरजन अटक मटक होति जिय माँझ

निकट न होत सुखु टकैं होति येंहूँ है ।

'जयसिंघ' यें बिधि बिरहु राधा मोहन कौ

प्रगट जनावतु संजोग के समेंहू है ॥

परम्परा में शृंगाररस के दो ही भेद मान्य रहे हैं, पर इसका अर्थ यह भी नहीं है कि जयसिंह ने पहली बार इसके तीन भेदों की बात कही है । उनसे बहुत पहले संस्कृत-आचार्य धनंजय ने शृंगाररस के तीन भेद क़िए थे-

अयोगो विप्रयोगश्च सम्भोगश्चेति स त्रिधा ।[1]

अर्थात् अयोग, विप्रयोग तथा सम्भोग । इनमें से सम्भोग या संयोग तो स्पष्ट है । अयोग से उनका तात्पर्य है नहीं मिल पांना और विप्रयोग का अर्थ है मिलकर अलग हो जाना ।[2] धनंजय कृत अयोग अन्य आचार्यों द्वारा किए गए वियोग के एक भेद 'पूर्वराग' के समकक्ष है ।

जयसिंह ने वियोग के भेदों का निरूपण नहीं किया । उनके 'संयोग वियोग' के लक्षण से यह संकेत नहीं मिलता क़ि अयोग अथवा पूर्वराग जैसी स्थिति के लिए उन्होंने यह भेद किया है । वह तो सिर्फ इतना कहते हैं कि एक ही नगर या घर में रहते हुए प्रिय से मिलन न हो पाना 'संयोगवियोग' है । अर्थात् समीप रहते हुए भी मिल न पाना 'संयोगवियोग' है । कहा जा सकता है कि जयसिंह निरूपित शृंगाररस के तीसरे भेद का सम्बन्ध धनंजय से नहीं है ।

जयसिंह ने शृंगाररस के संयोग और वियोग भेदों का अलग से लक्षण-निरूपण नहीं किया है उनके द्वारा दिए गए 'संयोगवियोग' नाम से तथा उसके लक्षण से स्पष्ट ध्वनित होता है कि वह 'संयोग' का अर्थ 'समीपता' मानते हैं जो उचित नहीं है । संस्कृत-काव्यशास्त्र में इस पर गम्भीर विवेचन हुआ है-

भानुदत्त के अनुसारं-"दर्शन स्पर्शन संलापादिभिरितरेतरमनु-भूयमानं सुखं परस्परसंयोगेनोत्पद्यमान आनन्दो वा संयोगः ।" अर्थात् परस्पर (युवक और युवती द्वारा) सुख का अनुभव या उनके परस्पर संयोग (साथ उठने-बैठने, बातचीत करने आदि) से उत्पन्न होने वाला आनन्द ही संयोग शृंगार कहलाता है ।[3]

विश्वनाथ का कथन है-

दर्शनस्पर्शनादीनि निपेवेते विलासिनौ ।

यत्रानुरक्तावन्योन्यं संभोगोऽयमुदाहृतः ॥

---

1. धनंजय कृत दशरूपक, व्याख्याकार-डॉ. भोलाशंकर व्यास, तृतीय संस्करण, छन्द संख्या-4/50 ।
2. वही, छन्द संख्या-4/50 तथा 4/57 ।
3. रसतरंगिणी, व्याख्याकार-आचार्य सीताराम चतुर्वेदी, प्रथम संस्करण, पृष्ठ संख्या-406-407 ।

अर्थात् परस्पर प्रेम-पगे नायक और नायिका के परस्पर दर्शन, परस्पर स्पर्शन आदि-आदि की अनुभूति का प्रदाता जो रस है वह संभोग शृंगार है ।[1]

पण्डितराज जगन्नाथ इसे स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि "संयोगो न दम्पत्योः सामानाधिकरण्यम्------संयोगवियोगाख्यावन्त करणवृत्ति विशेषौ, यत् संयुक्तो वियुक्तश्चास्मीति धीः ।"[2] अर्थात् संयोग का अर्थ 'स्त्री-पुरुष का एक स्थान पर रहना' नहीं है । संयोग इस चित्तवृत्ति का पर्याय है कि 'मैं मिला हुआ हूँ' और वियोग यह ज्ञान है कि 'मैं बिछड़ा हुआ हूँ ।'

स्पष्ट है कि केवल 'समीपता' संयोगशृंगार नहीं है । जयसिंह ने एक ही नगर या एक ही घर में रहते हुए नायक-नायिका की समीपता को 'संयोग' मान लिया है जबकि एक पलंग पर लेटे हुए (ईर्ष्यादि जन्य मान की अवस्था) नायक-नायिका की समीपता को भी आचार्यों ने संयोग न मानकर वियोग के अन्तर्गत माना है । स्पष्ट है कि जयसिंह से 'संयोग' को समझने में भूल हुई है । वस्तुतः जयसिंह जिसे 'संयोगवियोग' की स्थिति कह रहे हैं वहाँ 'संयोग' तो है ही नहीं ।

जहाँ तक 'वियोग' का सम्बन्ध है प्रायः आचार्यों ने 'अभीष्ट की अप्राप्ति' को विप्रलम्भ या वियोग माना है । अभीष्ट का अभिप्राय नायक या नायिका से है । जयसिंह द्वारा 'संयोगवियोग' के स्पष्टीकरण के लिए जो उदाहरण दिया गया है उसमें नायक-नायिका की परस्पर मिलनेच्छा पूर्ण नहीं होती । स्पष्ट है कि वहाँ वियोग शृंगार है ।

काव्यशास्त्रीय परम्परा में वियोग शृंगार के भेदों के सम्बन्ध में विस्तृत विवेचन मिलता है । यह निश्चय हो जाने के बाद कि जयसिंह जिसे 'संयोगवियोग' कह रहे हैं वहां वस्तुतः केवल वियोग है, यह विचारणीय हो जाता है कि जयसिंह निरूपित स्थिति को वियोग के किस भेद के अन्तर्गत परिगणित किया जाय ।

काव्यशास्त्रीय परम्परा में वियोग के चार भेद बहुमान्य हैं- -पूर्वराग, मान, प्रवास, करुण । साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ के अनुसार पूर्वराग से तात्पर्य है-

श्रवणाद्दर्शनाद्वापि मिथः संरूढरागयोः ।

दशाविशेषो योऽप्राप्तौ पूर्वरागः स उच्यते ॥

---

1. साहित्यदर्पण, व्याख्याकार-डॉ. सत्यव्रत सिंह, पंचम संस्करण, छन्द संख्या-3/210 ।
2. रसगंगाधर, व्याख्याकार-पण्डित बदरीनाथ झा, पण्डित मदनमोहन झा, द्वितीय संस्करण, पृष्ठ संख्या-150 ।

अर्थात् पूर्वराग का अभिप्राय है रूप सौन्दर्य आदि के श्रवण अथवा दर्शन से परस्पर अनुरक्त नायक-नायिका की उस दशा का जो कि उनके समागम के पहले की दशा हुआ करती है ।[1]

मान से अभिप्राय है कोप से । इसके दो भेद किए गए हैं- प्रणय मान और ईर्ष्या मान-

मानः कोपः स तु द्वेधा प्रणयेर्ष्यासमुद्भवः ।[2]

प्रवास विप्रलम्भ को विश्वनाथ ने इस प्रकार स्पष्ट किया है-

प्रवासो भिन्नदेशित्वं कार्याच्छापाच्च संभ्रमात् ।

अर्थात् कार्यवश, शापवश अथवा संभ्रमवश नायक के देशान्तर गमन को प्रवास विप्रलम्भ कहते हैं ।[3]

करुण वियोग को स्पष्ट करते हुए विश्वनाथ लिखते हैं-

यूनोरेकतरस्मिन्गतवति लोकान्तरं पुनर्लभ्ये ।

विमनायते यदैकस्ततो भवेत् करुणविप्रलम्भाख्यः ॥

अर्थात् प्रेमी और प्रेमिका में से किसी एक के दिवंगत हो जाने, किन्तु पुनरुज्जीवित हो सकने की अवस्था में, जीवित बचे दूसरे के हृदय के शोक संवलित रति भाव का अभिव्यंजन करुण विप्रलम्भ है ।[4]

काव्यप्रकाशकार मम्मट ने वियोग के पाँच भेद किए हैं- अभिलापहेतुक, विरहहेतुक, ईर्ष्याहेतुक, प्रवासहेतुक और शापहेतुक ।[5] इनमें से अभिलापहेतुक को पूर्वराग से, ईर्ष्याहेतुक को मान से सम्वद्ध किया जा सकता है । प्रवासहेतुक दोनों में है । मम्मट ने शापहेतुक को स्वतन्त्र भेद माना है जबकि विश्वनाथ ने उसे प्रवास (कार्यज, शापज, संभ्रमजन्य) में ही समेट लिया है । वस्तुतः प्रवास से तात्पर्य 'भिन्नदेशस्थिति' से है । शापज में प्रवास हो भी सकता है, नहीं भी हो सकता है ।

---

1. साहित्यदर्पण, 3/188
2. साहित्यदर्पण 3/198
3. साहित्यदर्पण, 3/204
4. साहित्यदर्पण 3/209
5. काव्यप्रकाश, व्याख्याकार-डॉ. सत्यव्रत सिंह, सातवाँ संस्करण, पृष्ठसंख्या-85

कालिदास कृत मेघदूत में कुबेर के शाप से यक्ष-यक्षिणी की 'भिन्नदेशस्थिति' है इसलिए उसे प्रवास के अन्तर्गत माना जा सकता है लेकिन, महाभारत के पाण्डु के विरह को प्रवास के अन्तर्गत कैसे रखा जा सकता है क्योंकि, पाण्डु अपनी रानियों के साथ ही रहते हैं और उनके विरह का कारण भी शाप है । यद्यपि मम्मट ने शापहेतुक को अलग से स्पष्ट नहीं किया और उदाहरण मेघदूत का ही दिया है तथापि शापवश विरह में 'भिन्नदेशस्थिति' अर्थात् प्रवास अनिवार्य नहीं है, वह 'समानदेशस्थिति' अर्थात् समीप रहते हुए भी हो सकता है । अतः शापहेतुक को प्रवास से अलग मानना ही उचित है । मम्मट ने करुण विप्रलम्भ नहीं माना ।

मम्मट कृत विरहहेतुक पूर्वोल्लिखित चार भेदों में से किसी के अन्तर्गत समाहित नहीं होता । यह नया भेद है । मम्मट ने इसे अलग से स्पष्ट तो नहीं किया लेकिन, जिस स्थिति के लिए उन्होंने यह भेद किया है वह उनके द्वारा दिए गए उदाहरण से स्पष्ट हो जाती है । उदाहरण इस प्रकार है-

अन्यत्र व्रजतीति का खलु कथा नाप्यस्य तादृक् सुहृद् ।
यो मां नेच्छति नागतश्च हहहा कोऽयं विधेः प्रक्रमः ।
इत्यल्पेतरकल्पनाकवलितस्वान्ता निशान्तान्तरे ।
बाला वृत्तविवर्तनव्यतिकरा नाप्नोति निद्रां निशि ॥

अर्थात् वे कहीं दूसरी ओर निकल जायेंगे, इसकी तो सम्भावना भी नहीं । उन्हें कोई उनका स्नेही रोक लेगा, यह भी सम्भव कैसे जब उनका कोई भी स्नेही ऐसा नहीं जिसे मेरा ध्यान न हो । ओह ! अभी तक न लौट आए ! क्या होने वाला है ! इस प्रकार न जाने कितनी मन में उठती बातों से विह्वल-व्याकुल बनी कोई मुग्धा अपने शयनागार में पड़ी, केवल करवटें बदलती, जागते जागते रात बिता रही है ।[1]

उदाहरण के पश्चात् 'एषा विरहोत्कंठिता' लिखकर मम्मट ने इसे विरहोत्कंठिता नायिका की स्थिति से सम्बद्ध किया है । मम्मट द्वारा दिए गए उदाहरण या विरहोत्कंठिता नायिका-जिसे उत्कंठिता या उत्का भी कहा गया है और जिसके लक्षणों के सम्बन्ध में आचार्यों में किंचित् मतभिन्नता भी पायी जाती है [2]- के

---

1. काव्यप्रकाश, 4/33 ।
2. (क) साहित्यदर्पण, 3/86 ।
   (ख) रसमंजरी, सम्पादक- पं. गोपाल शास्त्री नेने, तृतीय संस्करण, पृष्ठसंख्या-192 ।

लक्षणों के साथ जयसिंह कृत 'संयोगवियोग' के लक्षण-उदाहरण को मिलाकर देखा जाय तो दोनों को समान नहीं माना जा सकता। दोनों में अन्तर तो है ही।

इस प्रकार जयसिंह के 'संयोगवियोग' में जिस स्थिति का चित्रण है वह संस्कृत-आचार्यों द्वारा निरूपित वियोग के भेदों में से किसी के साथ अन्तर्भुक्त नहीं होती। पर, काव्य में इस प्रकार की स्थिति के चित्र मिलते हैं। विहारी का यह दोहा द्रष्टव्य है-

चितु तरसतु मिलत न बनतु वसि परोस के बास ।

छाती फाटी जाति सुनि टाटी ओट उसास ॥ [1]

जयसिंह द्वारा दिया गया उदाहरण स्वकीया प्रेम से सम्बद्ध है तो, यह परकीया प्रेम से। वस्तुतः समीप रहते हुए भी मिलनोत्सुक नायक-नायिका का लज्जादि के कारण मिल न पाना वियोग की एक अलग स्थिति मानी जानी चाहिए। एक अन्य रीतिकालीन कवि-आचार्य कुमारमणि ने अपने रसिक-रसाल नामक ग्रन्थ (रचनाकाल संवत् १७७६) में समीप रहते हुए भी लज्जादि के कारण वियोग को एक अलग स्थिति के रूप में निरूपित भी किया है। उन्होंने मम्मट कृत वियोग के पाँच भेदों के विवेचन के पश्चात् 'ऐसे संभ्रम लज्जादिहू तें वियोग' निर्देश के साथ दो उदाहरण दिए हैं। लज्जा सम्बन्धी उदाहरण इस प्रकार है-

कैसे 'कुमार' सुहात कहूँ बिन देखे दिखात, दसौं दिस सूनौं ।
लेत उसासन होत उदास तपै तन जैसे परै जल चूनौं ।
दूर विदेस के वास वियोग सबै सहिये लहिये हिय ऊनौं ।
भैंट की आस में पास निवास में दाहत है विरहानल दूनौं ॥ [2]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि जयसिंह ने जिस 'संयोगवियोग' को शृंगाररस का तीसरा भेद माना है वह वस्तुतः वियोग शृंगार है। हां, उन्होंने 'संयोगवियोग' के अन्तर्गत जिस स्थिति का उल्लेख या चित्रण किया है वह संस्कृत-आचार्यों द्वारा किए गए वियोग के किसी भेद के अन्तर्गत समाहित नहीं होती।

---

1. बिहारी-रत्नाकर, प्रणेता-जगन्नाथदास 'रत्नाकर', षष्ठ आवृत्ति 1979 छन्द संख्या-262।
2. रसिक-रसाल, सम्पादक-कण्ठमणि शास्त्री विशारद, संवत् 1994, छन्द संख्या-3/40।

यहाँ एक और बात विचारणीय है, वह यह कि जयसिंह ने 'संयोगवियोग' के स्पष्टीकरण के लिए दिए गए स्वरचित उदाहरण के पश्चात् अपने मत के समर्थन में एक संस्कृत-छन्द भी उद्धृत किया है जो इस प्रकार है-

दरफुल्ल कमलकानन सौरभसंभार मंथरः पवनः ।
दयितोरसि शयितामपि दयितामभितापयांचकार ॥

अर्थात् किंचित् खिले हुए कमलवन की सौरभ-संग्रह से मंथर [गति वाले] पवन ने दयित (नायक, पति) के ठरस् (हृदय, सीने) पर सोई हुई भी दयिता (प्रेयसी) को संतप्त किया।

यदि गहराई से देखें तो इसमें जो स्थिति चित्रित हुई है उसमें और जयसिंह रचित उदाहरण की स्थिति में अन्तर है। दोनों को समान नहीं कहा जा सकता। जयसिंह द्वारा उद्धृत उपर्युक्त संस्कृत-छन्द में जिस स्थिति का चित्रण है वैसी ही स्थिति के लिए रीतिकालीन कवि कुमारमणि ने भी 'संयोग में वियोग' शीर्षक देकर एक उदाहरण दिया है। लेकिन, उन्होंने इसे शृंगाररस के तीसरे भेद के रूप में निरूपित नहीं किया है। उदाहरण इस प्रकार है-

विकच गुलाब सुगंधि लहि लगत गंधवह गात ।
पिय-हिय भेंटति भुज भरें तिय जिय अति अकुलात ॥[1]

रीतिमुक्त कवि घनानन्द के काव्य में भी ऐसे स्थिति-चित्र देखे जा सकते हैं-

ढिग बैठे हू पैठि रहै उर मैं घर कै दुख को सुख दोहत है ।
दृग आगे तें बैरी टरै न कहूँ जगि जोहन अंतर जोहत है ।
घनआनँद मीत सुजान मिलें, बसि बीच तऊ मति मोहत है ।
यह कैसो सँजोग न बूझि परे जु वियोग न क्यौंहूँ बिछोहत है ॥[2]

---

1. रसिक-रसाल, छन्द संख्या-3/41।
2. घनआनंद-कबित्त, सम्पादक-विश्वनाथप्रसाद मिश्र, सप्तम संस्करण, छन्द संख्या 475।

चित्रालंकार

काव्यरस में अलंकार-वर्णन के प्रसंग में चित्रालंकारों का भी वर्णन है, पर परम्परा से थोड़ी भिन्नता लिए हुए। भिन्नता यह है कि जहाँ अन्य आचार्यों ने प्रायः एक स्थान पर ही इन अलंकारों का वर्णन किया है वहाँ जयसिंह ने दो बार इनका वर्णन किया है। एक बार तो शब्दालंकारों के साथ और दूसरी बार अर्थालंकारों का वर्णन समाप्त करने के पश्चात्। हिन्दी में चित्रालंकारों का वर्णन करने वाले रीतिशास्त्रियों ने प्रायः शब्दार्थालंकारों के वर्णन के पश्चात् 'चित्र अलंकार' शीर्षक से चित्रालंकारों का वर्णन किया है। जयसिंह ने स्पष्टतः स्वीकार किया है कि उनका अलंकार-वर्णन 'काव्यप्रकाश' पर आधारित है-

अलंकार बरननु कर्‍यौ काव्यप्रकास जु रीति ।
निजु कै जबहीं समुझि हौ जबै होइ यामें प्रीति ॥

पर, चित्रालंकारों की दृष्टि से स्थिति भिन्न दिखाई पड़ती है। मम्मट ने चित्रालंकारों का वर्णन शब्दालंकारों के साथ किया है। अर्थालंकार-विवेचन के पश्चात् पुनः चित्रालंकारों का विवेचन नहीं किया है। वैसे उपर्युक्त दोहा दूसरी बार चित्रालंकारों के वर्णन से पूर्व (अर्थालंकारों के बाद) आया है।

अलंकार-प्रकरण के अन्त में चित्रालंकारों का यह वर्णन या तो हिन्दी की काव्यशास्त्रीय परम्परा का प्रभाव है (हालाँकि यह कहना पूरी तरह सही नहीं होगा क्योंकि, चित्रालंकारों का वर्णन करने वाले हिन्दी-आचार्यों ने इन्हें अलग-अलग दो बार नहीं, शब्दार्थालंकारों के पश्चात् एक ही स्थान पर रखा है) या फिर, यह हो सकता है कि पहले कवि का विचार चित्रालंकार प्रकरण को विस्तार देने का न रहा हो। अलंकार-प्रकरण समाप्त होते-होते बाद में विचार बदल गया हो और अन्य चित्रालंकारों का वर्णन पीछे जोड़ दिया गया हो।

वैसे यदि इस प्रकरण पर सूक्ष्मता से विचार किया जाय तो जयसिंह द्वारा शब्दालंकारों के साथ वर्णित चित्रालंकारों और अर्थालंकारों के बाद वर्णित चित्रालंकारों को दो अलग-अलग वर्गों में रखा जा सकता है। कहीं ऐसा तो नहीं कि उन्होंने अपने विशेष दृष्टिकोण के कारण ऐसा किया हो। दोनों भागों में वर्णित चित्रालंकारों में से शब्दालंकारों के साथ वर्णित चित्रालंकारों को वर्ण-चित्र कहा जा सकता है और अर्थालंकारों के बाद वर्णित चित्रालंकारों को लेखनी चित्र। जयसिंह ने शब्दालंकारों के साथ जिन चित्रालंकारों का वर्णन किया है उन सबमें वर्ण या शब्द का चमत्कार है, बाकायदे चित्र की स्थिति नहीं है। इसके अन्तर्गत उन्होंने अन्तर्लापिका, बहिर्लापिका, सर्वलघु, एकाक्षरी, द्वयक्षरी के उदाहरण दिए हैं जबकि

अर्थालंकारों के बाद वर्णित चित्रालंकार बाकायदे चित्रों पर आधारित हैं । बल्कि, वहाँ छन्द रूप में अलग से न लिखकर केवल चित्र-रूप में ही छन्दों को लिखा गया है । यह भी ध्यान देने योग्य है कि काव्यरस और उसके आधार ग्रन्थ 'काव्य प्रकाश' में शब्दालंकार के अन्तर्गत वर्णित चित्रालंकार भिन्न-भिन्न हैं । काव्यप्रकाशकार ने खड्गबन्ध, मुरजबन्ध, पद्मबंध और सर्वतोभद्र के उदाहरण दिए हैं जो सीधे चित्रों से सम्बद्ध हैं । जयसिंह ने इन्हें शब्दालंकार के अन्तर्गत न देकर अलंकार-प्रकरण के अन्त में दिया है । यही नहीं, दोनों के चित्रालंकार के लक्षण में भी अन्तर देखा जा सकता है । काव्यप्रकाशकार का लक्षण इस प्रकार है-

तच्चित्रं यत्र वर्णानां खड्गाद्याकृतिहेतुता ।[1]

अर्थात् 'चित्र' वह अलंकार है जिसे वर्ण-विन्यास में खड्गादि वस्तुओं की आकृतियों का प्रकाशन कहा करते हैं ।

काव्यरसकार ने चित्रालंकार का लक्षण इस प्रकार दिया है-

जहँ जुराउ तें बर्न के सोभा अति अधिकाइ ।
चित्र कबित तासों कहें जाकौ है यह भाइ ॥[2]

यहाँ केवल वर्णों के जुड़ाव अर्थात् वर्ण-विन्यास तक ही चित्रअलंकार को सीमित कर दिया गया है । 'खड्गादि वस्तुओं की आकृति' को जयसिंह ने छोड़ दिया है और उदाहरण भी वर्ण-प्रयोग से उत्पन्न चमत्कार पर आधारित हैं । विभिन्न वस्तुओं की आकृति वाले चित्र शब्दार्थालंकारों के बाद अलग से वर्णित हुए हैं ।

ऐसा लगता है जैसे जयसिंह शब्दालंकारों के अन्तर्गत उन्हीं चित्रालंकारों को मानने के पक्ष में हैं जो विशिष्ट वर्ण-विन्यास से चमत्कृत करते हैं । विभिन्न वस्तुओं की आकृतिवाले चित्रालंकारों को वह शब्दालंकारों के अन्तर्गत न मानकर उन्हें अलंकारों का एक स्वतन्त्र विभाग मानते हैं । हालाँकि उन्होंने ऐसा विभाजन और अपनी ऐसी मान्यता का उल्लेख कहीं किया नहीं है ।

---

1. मम्मट कृत काव्यप्रकाश, सम्पादक-डॉ. सत्यव्रत सिंह, सातवाँ संस्करण, छन्दसंख्या-9/85 ।
2. काव्यरस, छन्दसंख्या-324 ।

हिन्दी–रीतिकवि मण्डन का प्रभाव

हिन्दी का रीतिशास्त्र संस्कृत-काव्यशास्त्र पर आधारित है । प्रायः प्रत्येक रीतिकालीन कवि-आचार्य ने किसी न किसी संस्कृत ग्रन्थ या ग्रन्थों को अपने शास्त्रीय विवेचन का आधार बनाया है । जयसिंह भी इसका अपवाद नहीं हैं । उन्होंने तो अनेक स्थलों पर स्पष्ट रूप से संस्कृत-आचार्यों और ग्रन्थों का उल्लेख भी किया है । काव्यरस पर इनका प्रभाव स्वाभाविक ही है और उसे आसानी से देखा समझा जा सकता है । विशेष बात यह है कि काव्यरस में हिन्दी के दो कवियों- मण्डन और जयगोविन्द वाजपेयी के रस-लक्षण सम्बन्धी दोहे उद्धृत हुए हैं । यह देखना महत्वपूर्ण होगा कि इन कवियों के केवल दोहे भर उद्धृत हुए हैं या इनका कोई अन्य प्रभाव भी काव्यरस पर है । चूँकि जयगोविन्द वाजपेयी कृत 'कविसर्वस्व' उपलब्ध नहीं है इसलिए उसका कहाँ और कितना प्रभाव काव्यरस पर है, इसका आकलन नहीं किया जा सकता । हम यहाँ मण्डन कृत रसरत्नावली के प्रभाव का विवेचन-विश्लेपण कर रहे हैं-

नायक–भेद

संस्कृत-काव्यशास्त्र में नायक-भेद के सम्बन्ध में मुख्य रूप से दो परम्पराएँ मिलती हैं । एक परम्परा में विश्वनाथ आदि आचार्य हैं जिन्होंने पहले धीरोदात्तादि चार भेद नायक के माने हैं । तदनन्तर शृंगार रस के विशेष परिप्रेक्ष्य में इन चारों के अनुकूल, दक्षिण, धृष्ट और शठ भेद किये हैं । फिर इन सबके उत्तम, मध्यम और अधम भेद भी किए हैं ।[1]

दूसरी परम्परा में भानुदत्त आते हैं जिन्होंने केवल शृंगार रस के परिप्रेक्ष्य में ही वर्गीकरण करते हुए नायक के पहले पति, उपपति और वैशिक तीन भेद किए हैं । तत्पश्चात् पति और उपपति के अनुकूलादि चार-चार भेद माने हैं । वैशिक के अनुकूलादि भेद न मानकर उसे उत्तम, मध्यम और अधम के भेद से तीन प्रकार का माना है ।[2]

जयसिंह का नायक-सम्बन्धी वर्गीकरण इन दोनों ही परम्पराओं से मेल नहीं खाता । उन्होंने न तो धीरोदात्तादि चतुर्विध वर्गीकरण को अपने ग्रन्थ में स्थान दिया और न ही पति, उपपति और वैशिक की त्रयी को स्वीकार किया । उन्होंने उत्तम, मध्यम तथा अधम भेद भी नहीं माने । जयसिंह ने नायक के सीधे चार भेद.-

---

1. साहित्यदर्पण, सम्पादक-डॉ. सत्यव्रत सिंह, पंचम संस्करण, तृतीय परिच्छेद ।
2. रसमंजरी, सम्पादक-पं. गोपालशास्त्री नेने, तृतीय संस्करण, नायक-भेद प्रकरण ।

अनुकूल, दक्षिण धृष्ट तथा शठ किए हैं । इस दृष्टि से उनका वर्गीकरण हिन्दी के कवि-आचार्य मण्डन से पूरी तरह मेल खाता है । मण्डन ने भी नायक के अनुकूलादि चार भेद ही किए हैं ।[1]

लेकिन, आगे नायिका-भेद प्रकरण के अन्तर्गत जयसिंह ने 'अथ उपपति' शीर्षक से एक उदाहरण उपपति-सम्बन्धी दिया है[2] और सामान्या नायिका के उदाहरण के साथ 'वैशिक-सामान्या यथा' शीर्षक देकर उसे वैशिक से भी सम्बद्ध कर दिया है ।[3]

नायिका-भेद

जयसिंह कृत नायिका-भेद विवेचन संस्कृत-ग्रन्थों पर आधारित है । पर, कुछ ऐसे स्थल हैं जहां मण्डन का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है । परकीया नायिका के एक भेद 'कन्यका' के जयसिंह ने पुनः दो उपभेद किए हैं-1-मुग्धा सरस कुमारिका 2-मध्या सरस कुमारिका ।[4] हिन्दी-आचार्य मण्डन से पूर्व संस्कृत-हिन्दी के किसी आचार्य ने कन्यका नायिका के इस प्रकार के उपभेद नहीं किए । मण्डन कृत रसरत्नावली में पहली बार 'क्वाँरी' नायिका के ये उपभेद मिलते हैं :-

मुग्धा सरस कुमारिका, अरु मध्या सम होइ ।[5]

स्पष्ट है कि जयसिंह को इस प्रकार के उपभेदों की प्रेरणा मण्डन से मिली है ।

नायिका-भेद के अन्तर्गत प्रायः सभी आचार्यों ने पति के प्रेम के आधार पर ज्येष्ठा और कनिष्ठा नामक भेद किए हैं । मण्डन ने भी इस प्रकार का वर्गीकरण स्वीकार किया है लेकिन, नाम-परिवर्तन के साथ । उन्होंने ज्येष्ठा-कनिष्ठा नाम स्वीकार न कर इनके क्रमशः सरस और निरस नाम दिए हैं । जिस नायिका के प्रति नायक अधिक प्रेमभाव रखता हो उसे ज्येष्ठा न कहकर मण्डन ने सरस कहा है और जिस पर नायक का प्रेम कम हो उस नायिका को कनिष्ठा के स्थान पर निरस कहा है । इन नायिकाओं का मण्डन कृत यह नया नामकरण पूरी तरह उचित है ।[6]

---

1. मण्डन-ग्रन्थावली, सम्पादक-डॉ. देवेन्द्र, प्रथम संस्करण, रसरत्नावली-नायक-भेद प्रकरण ।
2. काव्यरस, छन्दसंख्या-97 ।
3. काव्यरस, छन्दसंख्या-99 ।
4. काव्यरस, छन्दसंख्या-91-93 ।
5. रसरत्नावली, छन्दसंख्या-1/75 ।
6. हिन्दी-रीतिकविता के परिप्रेक्ष्य में कवि मण्डन का अध्ययन, डॉ. देवेन्द्र, प्रथम संस्करण, पृष्ठ संख्या-147 ।

जयसिंह ने धीरादि नायिकाओं के विवेचन के पश्चात् ज्येष्ठा और कनिष्ठा नायिकाओं का लक्षण-उदाहरण दिया है । अपने लक्षण में और शीर्पक में तो उन्होंने ज्येष्ठा-कनिष्ठा नामों का ही व्यवहार किया है पर अध्याय की समाप्ति पर अध्याय में विवेचित विपयों के उल्लेख में उन्होंने ज्येष्ठा-कनिष्ठा के स्थान पर सरस-निरस नामों का व्यवहार किया है-"इतिश्री राजा जयसिंघ बिरचिते काव्यरसे धीरादि भेद सरस निरस परकीयादि सुयंदूतिका उपपति बैसिक बर्नंनं नाम त्रितीयोध्याय:॥"

स्पष्ट है कि जयसिंह 'सरस-निरस' नामों से भलीभांति परिचित थे और प्रभावित भी थे । परम्परा और प्रचलन के कारण विवेचन के क्रम में तो उन्होंने ज्येष्ठा-कनिष्ठा नाम ही दिए, पर 'सरस' और 'निरस' नामों से प्रभावित होने के कारण अध्याय की समाप्ति-सूचक पंक्तियों में उन्होंने इन्हीं नामों का प्रयोग किया, या कर गये ।

दूती-भेद

जयसिंह ने दूतियों के तीन भेद किए हैं और तीनों के अलग-अलग लक्षण-उदाहरण दिए हैं । संस्कृत-आचार्यों में भानुदत्त ने दूती के उत्तम मध्यम तथा अधम भेद नहीं किए । विश्वनाथ ने इस प्रकार के भेदों की बात कही है, किन्तु अलग-अलग, विस्तार से लक्षण-उदाहरण नहीं दिए । केवल एक पंक्ति में इस ओर संकेत कर दिया है-

एता अपि यथौचित्यादुत्तमाधममध्यमा: ।[1]

लेकिन, मण्डन ने इन तीनों प्रकारों की दूतियों के अलग-अलग लक्षण-उदाहरण देकर इन्हें स्पष्ट किया है । इस दृष्टि से मण्डन और जयसिंह में साम्य है । यही नहीं, कहीं-कहीं पर तो शब्दावली भी काफी मिलती-जुलती है । उदाहरण के लिए मध्यम दूती के दोनों आचार्यों के लक्षण देखिए-

मण्डन- दूती मध्यम होइ सो, चाहै कछू न साजु ।
बातैं थोरी कहि करै, ज्यौं त्यौं ही हित काजु ॥[2]

जयसिंह- बातै थोरी कहि करै, प्रीति रीति रुचि काज ।
तासों मध्यम दूतिका, कहत सबै कविराज ॥[3]

नायिकाओं के यौवनालंकार

जयसिंह ने नायिकाओं की चेष्टाओं या यौवनालंकारों के वर्णन के लिए साहित्यदर्पणकार वाली परम्परा को स्वीकार किया है । उन्होंने कुल 28 अलंकारों

1. साहित्यदर्पण, 3/130 ।
2. रसरत्नावली, 1/32 ।
3. काव्यरस, छन्दसंख्या-154 ।

का निरूपण किया है । जयसिंह से पूर्व हिन्दी-रीतिकवि मण्डन ने भी साहित्यदर्पण को आधार बनाकर इनका निरूपण किया है । जयसिंह और मण्डन के वर्णन की अनेक समानताओं के लिए कहा जा सकता है कि दोनों का आधार 'साहित्यदर्पण' है इसलिए साम्य है । लेकिन, कुछ ऐसी समानताएं हैं जो जयसिंह पर मण्डन के प्रभाव को स्पष्ट सूचित करती हैं । उदाहरण के लिए साहित्यदर्पण के 'औदार्य' और 'प्रगल्भता' को मण्डन ने 'विनय' और 'ढीठौ' (ढीठता) संज्ञा प्रदान की है ।[1] जयसिंह ने भी अपने काव्यरस में इन्हीं नामों का व्यवहार किया है ।[2] स्पष्ट है कि जयसिंह द्वारा 'विनय' और 'ढीठौ' नाम मण्डन कृत रसरत्नावली के आधार पर दिए गए हैं । यहां यह स्पष्ट कर देना उचित होगा कि 'औदार्य' और 'विनय' तथा 'प्रगल्भता' और 'ढीठता' के अर्थ और लक्षणों में कोई अन्तर नहीं है । अर्थात् केवल नाम-भेद है, अर्थ-भेद नहीं ।

1. (क) साहित्यदर्पण, 3/97 ।
   (ख) रसरत्नावली, 2/46 ।
2. काव्यरस, छन्दसंख्या-245,252 ।

सम्पादन–शैली

काव्यरस के सम्पादन में दो हस्तलिखित प्रतियों का उपयोग किया गया है । दोनों ही खण्डित हैं, आदि से भी और अन्त से भी । राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर में इस कृति की एक प्रति सुरक्षित है । ग्रन्थ की संख्या 39960 है । इसमें कुल 52 पत्र हैं । यह प्रति ठीक दूसरे अध्याय से प्रारम्भ है । प्रथम अध्याय खण्डित है । उपलब्ध प्रथम पत्र का प्रारम्भ प्रथम अध्याय की समाप्ति सूचक पंक्तियों से हुआ है । इन पंक्तियों के पश्चात् जो प्रथम छन्द है उसकी संख्या 40 है । अर्थात् काव्यरस के प्रथम अध्याय में 39 छन्द रहे होंगे जो इस प्रति में नहीं हैं । इसी प्रकार अन्त के भी कुछ छन्द इसमें नहीं हैं । प्रस्तुत ग्रन्थ के 516 संख्यक छन्द की तृतीय पंक्ति तक ही इसमें उपलब्ध है ।

काव्यरस की दूसरी हस्तलिखित प्रति, जिसका उपयोग हमने सम्पादन में किया है, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान की जयपुर शाखा में सुरक्षित ग्रन्थ संख्या 11889 है । इसमें कुल 41 पत्र हैं । यह हस्तलेख प्रस्तुत ग्रन्थ के 86 संख्यक छन्द से प्रारम्भ हुआ है । इसका अंतिम छन्द प्रस्तुत ग्रन्थ का अंतिम छन्द (संख्या 521) है । 521 संख्यक छन्द का चौथा चरण इस प्रति के अगले पत्र में रहा होगा जो उपलब्ध नहीं है ।

एक तीसरी हस्तलिखित प्रति की सूचना तो प्राप्त हुई पर, हस्तलेख उपलब्ध नहीं हो सका । नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी के हस्तलिखित हिन्दी ग्रन्थों के त्रैवार्षिक खोज विवरण (सन् 1938-40) में काव्यरस की एक हस्तलिखित प्रति का विवरण है । इसका प्राप्ति स्थान वहां इस प्रकार है- पं. हरिकृष्णजी वैद्य 'कमलेश', श्रीकृष्ण औषधालय, डीग, राज्य-भरतपुर । यह हस्तलेख भी आदि और अन्त से खण्डित है । खोज विवरण के अनुसार इस प्रति का प्राप्त प्रारम्भिक छन्द प्रस्तुत ग्रन्थ का 125 संख्यक छन्द है और प्राप्त अन्तिम छन्द प्रस्तुत ग्रन्थ का 324 संख्यक छन्द है । इस प्रकार उपर्युक्त दोनों हस्तलेखों की तुलना में इस हस्तलेख का अधिक अंश खण्डित है ।

काव्यरस की प्राप्त दोनों प्रतियों में जयपुर वाली प्रति पाठ की दृष्टि से अपेक्षाकृत अधिक सुस्पष्ट और शुद्ध है । इसलिए हमने उसी को आधार स्वरूप ग्रहण किया है । दोनों हस्तलेखों में वर्तनी-सम्बन्धी भिन्नता देखने को मिलती है । अर्थात् एक ही शब्द दोनों हस्तलेखों में अलग-अलग रूप में लिखा मिलता है । जैसे-एक-येक, एते-येते आदि । जयपुर वाली प्रति को आधार रूप में ग्रहण करते हुए हमने छन्दसंख्या 86 से शब्दों की वर्तनी को उसी के अनुसार स्वीकार किया

है । अर्थात् एक, एते आदि रूप रखे हैं । चूंकि छन्द संख्या 86 से पूर्व के छन्द केवल जोधपुर वाली प्रति में मिले हैं इसलिए उनमें शव्द-रूप उसी के अनुसार रखे हैं ।

एक ही हस्तलेख में एक ही शव्द अलग-अलग स्थलों पर अलग-अलग रूपों में मिलता है । यथा-मृग-म्रग, भौहें-भौहै-भौंहे, हँसी-हसी आदि । यह ब्रजभाषा के हस्तलेखों की एक सामान्य प्रवृत्ति है । हमने इन्हें ज्यों का त्यों रखा है । अपनी ओर से एकरूपता लाने का प्रयास नहीं किया ।

प्राचीन लेख-पद्धति के अनुसार 'क्ष' कभी-कभी 'क्ष' ही लिखा रहता है और कभी-कभी 'च्छ' या केवल 'छ' । पर केवल 'छ' भी पढ़ा जाता था दुहरा 'छ' । दोनों हस्तलेखों में 'क्ष' के लिए 'क्ष' का प्रयोग भी है और केवल 'छ' का भी । यद्यपि प्राचीन पाठ-पद्धति के अनुसार 'छ' को 'क्ष' करने की आवश्यकता नहीं थी तथापि सुविधा के लिए छन्दानुरोध से जहां आवश्यक लगा है वहां 'छ' के स्थान पर 'क्ष' कर दिया गया है । यथा-लछन-लक्षन, दछिनु-दक्षिनु आदि । इसी प्रकार हस्तलेखों में 'च्छ' के लिए भी केवल 'छ' का प्रयोग हुआ है । प्राचीन पाठ-पद्धति के अनुसार यहां भी परिवर्तन की आवश्यकता नहीं थी पर, आधुनिक समय के अनुरूप, छन्दानुरोध से हमने 'छ' को 'च्छ' कर दिया है । जैसे-आगछतपतिका-आगच्छतपतिका आदि ।

प्राचीन पद्धति के अनुसार दोनों हस्तलेखों में 'ख' के लिए 'प' का प्रयोग हुआ है । जैसे सुप, देपत, अपियां आदि । हमने आधुनिक काल के अनुरूप ऐसे शब्दों में 'ष' के स्थान पर 'ख' कर दिया है ।

हस्तलिखित प्रतियों में 'ड़', 'ढ़' ध्वनियों का प्रयोग नहीं है, केवल 'ड', 'ढ' का प्रयोग है । हमने वर्तमान समय के अनुरूप आवश्यकतानुसार परिवर्तन कर दिया है-बडे-बड़े, बढाइ-बढ़ाइ आदि ।

हस्तलेखों में 'ए' तथा 'ऐ' 'अे' तथा 'अै' रूप में भी लिखे गये हैं । हमने 'अे', 'अै' को 'ए', 'ऐ' के रूप में परिवर्तित कर दिया है ।

पाठ-निर्धारण में संस्कृत के काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों की भी सहायता ली गयी है । 'नायिकाओं के अलंकार' प्रकरण के अन्तर्गत दोनों हस्तलिखित प्रतियों में 'विच्छित्ति' और 'विहृत' को क्रमशः 'बिचित्र' और 'बिक्रित' लिखा है । शीर्षक में भी और लक्षण में भी । काव्यरस का यह प्रकरण विश्वनाथ कृत साहित्यदर्पण पर आधारित है । हमने 'बिचित्र' और 'बिक्रित' को 'विच्छित्ति' और 'विहृत' कर दिया है ।

काव्यरस में प्रमाण-स्वरूप कहीं-कहीं संस्कृत के छन्द भी उद्धृत किए गए हैं जिनका पाठ बहुत विकृत मिला। जिनके मूल ग्रन्थों का पता चल सका उन्हें मूल ग्रन्थों के अनुसार और जिनके मूल ग्रन्थों का पता नहीं चल सका उन्हें जहां तक सम्भव था, संशुद्ध कर दिया गया है।

पाठ-निर्णय में छन्द-गति का भी ध्यान रखा गया है। सवैया और कवित्तों में लय का विशेष महत्व है। छन्द संख्या 212 का प्रथम चरण हस्तलेखों में इस प्रकार है-

कंचन के आभूषनइ हाँते करे राधिका,
रतनमय आभूषन पहिरे है तन में।

मनहरण या घनाक्षरी के नियम के अनुसार यहां 31 वर्ण होने चाहिए, पर हैं 32। मनहरण की लय के अनुसार पढ़ने पर प्रथम पंक्ति के 'आभूषनइ' के 'न' और 'इ' के अलग-अलग उच्चारण से लय भंग होती है। यदि 'इ' को हटा दिया जाय तो लय ठीक बैठती है और एक वर्ण की अधिकता की समस्या भी दूर हो जाती है। पर, ऐसा करने पर यति 15, 16 पर होती है, जबकि नियमानुसार उसे 16, 15 पर होना चाहिए। हमारे विचार से दूसरी पंक्ति का 'रतनमय' शब्द 'रतनमै' रहा होगा जो लिपिकर्ताओं द्वारा 'रतनमय' कर दिया गया। ऐसा इस कारण भी हो सकता है कि कभी-कभी हस्तलेखों की प्रतिलिपि स्वयं पढ़कर नहीं, दूसरे से सुनकर भी की जाती थी। एक व्यक्ति बोलता जाता था और 'लिखक' लिखता जाता था। ऐसे में 'रतनमै' का 'रतनमय' हो जाना आसान है। यदि 'रतनमय' को 'रतनमै' कर दिया जाय तो वर्ण और यति दोनों की समस्या हल हो जाती है। पर, लय-भंग की समस्या फिर भी रह जाती है। वस्तुतः 'आभूषनइ' के 'न' और 'इ' का उच्चारण अलग-अलग न होकर 'इ' को 'न' से जोड़कर एक साथ पढ़ना होगा और प्रवाहपूर्ण ढंग से इसे 'नि' की तरह उच्चरित करना होगा। लिखा तो दोनों को अलग-अलग ही जायेगा पर, उच्चारण एक साथ मिलाकर 'आभूषनि' करना होगा। ऐसा करने पर वर्ण, यति और लय तीनों का समाधान हो जाता है। जो लोग प्राचीन काव्य की लिखने और पढ़ने की शैली से परिचित हैं वे न तो इसे हमारी कोरी कल्पना समझेंगे और न ही किसी प्रकार जोड़-तोड़ कर बैठाया गया समाधान मानेंगे।

पाठ-निर्धारण में अर्थ का भी ध्यान रखा गया है और इसके लिए कहीं-कहीं हस्तलिखित प्रतियों के पाठों को अस्वीकार कर अपनी ओर से भी पाठ देना पड़ा है । उदाहरण के लिए छन्द संख्या 345 का अन्तिम चरण दोनों प्रतियों में इस प्रकार है -

कैधौ तेरे नेंन कैधौ ऐन रस मैन हू के
नेंक की लगनि माँझ बेधि जात हिय कौ ॥

यहां 'रस' शब्द की कोई अर्थ-संगति नहीं बैठ रही । बैठे भी तो कैसे ? जब शब्द ही कुछ का कुछ हो गया हो । वस्तुतः शब्द कुछ और था वर्ण-व्यत्यय से हो कुछ और गया । वर्णों के उलटफेर से 'सर' 'रस' हो गया । 'सर' शब्द से अर्थ पूरी तरह बैठ जाता है । अतः हमने दोनों प्रतियों में होने के बावज़ूद 'रस' पाठ को अस्वीकार कर 'सर' पाठ दिया है ।

परन्तु, ऐसे परिवर्तन विशेष परिस्थितियों में ही किए गए हैं । कहीं-कहीं स्पष्ट आवश्यकता अनुभव होते हुए भी परिवर्तन न करना ही उचित समझा गया । उदाहरणार्थ छन्द संख्या 99 के तुकान्त में 'मन मै', 'धन मै', 'तन मै', के साथ अन्तिम चरण में 'छिन मै' खटकता है । 'छिन' के स्थान पर 'छन' होता तो ठीक रहता । 'छिन' को 'छन' किया तो जा सकता था पर, एक तो दोनों हस्तलेखों में 'छिन' मिलता है । दूसरे, 'क्षण' का बहुप्रचलित ब्रजभाषा-रूप 'छिन' ही है, 'छन' नहीं । तीसरे, काव्यरस में अन्यत्र 'क्षण' के लिए 'छन' रूप का प्रयोग नहीं मिलता । इसलिए परिवर्तन न कर ज्यों का त्यों रहने दिया गया है । एक स्थान पर (छन्द संख्या 371) तुकान्त में ही 'क्षण' के लिए 'षन' प्रयोग मिलता है परन्तु, केवल इसी आधार पर 'छिन' को 'खन' करना उचित नहीं लगा ।

विषयोल्लेख या शीर्षक में परिष्कृत वर्तनी का प्रयोग किया गया है । उदाहरणार्थ नायक (नाइक), नायिका (नाइका या नाइिका), स्वयंदूतिका (सुयं दूतिका), शृंगार (सिंगार), शिक्षा (सिछा), लक्षण (लछन), उदाहरण (उदाहरन या उदाहरनु), भाव (भाउ) आदि ।

हस्तलेखों में केवल लक्षण के अन्तर्गत छन्द का निर्देश है । उदाहरण के छन्द का नामोल्लेख नहीं है । लक्षण प्रायः दोहा छन्द में हैं । जोधपुर वाली प्रति में छन्द-निर्देश में कहीं 'दोहा' लिखा है और कहीं-कहीं 'दोहरा' । जयपुर वाली प्रति में सर्वत्र 'दोहा' लिखा है । हमने सर्वत्र 'दोहा' का ही प्रयोग किया है ।

पाठान्तर-संकलन में हमने मूल-पाठ में कोई विकृति (चिह्न या अंक आदि) न लगाकर छन्द में प्रयुक्त शब्द को आधार बनाया है। अर्थात् छन्द में प्रयुक्त शब्द को पाद-टिप्पणी में रखकर पाठान्तर दिया है। पाठों के संकलन में शब्दान्तर और अर्थान्तर का ध्यान रखा गया है। वर्तनी के कारण होने वाले रूपान्तर मात्र का संकलन प्रायः नहीं किया गया।

पाठ-संग्रह में प्रति-नामोल्लेखन के लिए हमने सम्बद्ध प्रति में से ही एक संक्षिप्त शब्द चुनकर उसी का प्रयोग सर्वत्र किया है। जहां सम्पादन में प्रयुक्त दोनों हस्तलिखित प्रतियों के पाठ को अस्वीकार कर अपनी ओर से पाठ दिया गया है वहां यदि दोनों प्रतियों का पाठ अलग-अलग है तो दोनों प्रतियों के पाठ-रूप प्रति-नामोल्लेख के साथ दिए गए हैं और जहां दोनों प्रतियों का पाठ एक ही है वहां पाठ-रूप देकर प्रति-नामोल्लेख के स्थान पर 'सर्वत्र' लिखा गया है जिसका अर्थ है आधारभूत दोनों प्रतियों में। जहां पाठान्तर के साथ कुछ भी उल्लिखित नहीं है, वह इस बात का सूचक है कि सम्बद्ध छन्द एक ही प्रति में मिला है और छन्द में प्रयुक्त पाठ हमने अपनी ओर से दिया है तथा पाठान्तर में संकलित पाठ हस्तलिखित प्रति में है। जो छन्द एक ही प्रति में मिले हैं उनका उल्लेख पाद-टिप्पणी में कर दिया गया है।

हस्तलेखों में छन्द-क्रमांक गड़बड़ हुआ है। कहीं पर एक ही संख्या दो बार लिख गयी है तो कुछ छन्द क्रम-परिगणन में छूट गए हैं। जोधपुर वाली प्रति में कुछ छन्द ही छूटे हुए हैं। इन सब कारणों से दोनों हस्तलेखों के छन्द संख्यांक में अन्तर है। चूंकि प्रथम उपलब्ध छन्द की संख्या 40 है इसलिए हमने 40 से संख्या का क्रम प्रारम्भ कर आगे उसे लगातार जारी रखा है।

चित्र-अलंकारों में काफी श्रम करना पड़ा है। हस्तलिखित प्रतियों में चित्र कोई है, शीर्षक में नाम कोई और ही दिया गया है। इसी प्रकार कुछ चित्र-रूप परम्परा से मेल नहीं खाते। विचार-विमर्श से काफी समस्याएं हल होती हैं पर, इस प्रकार की काव्य-पद्धति को जानने-समझने वाले अब कम ही लोग मिलते हैं। प्राचीन ग्रन्थों को देख-समझकर यथावश्यक परिवर्तन कर दिए गए हैं। सुविधा के लिए हमने अंकों, तीर के चिन्हों तथा रेखाओं आदि के द्वारा पढ़ने की विधि संकेतित कर दी है।

अर्थ-बोध में सुगमता की दृष्टि से मूल में आधुनिक विराम-चिह्नों का कहीं-कहीं प्रयोग किया गया है। अर्थ की सुविधा के लिए ही अन्त में 'शब्दकोश' की योजना की गयी है। प्राचीन काव्य के शब्दों का अर्थ करना परिश्रम साध्य कार्य

है । काव्यरस में अनेक ऐसे शब्द प्रयुक्त हुए हैं जो बड़े-बड़े और विशिष्ट शब्द कोशों में भी नहीं मिले । या शब्द मिले तो उनका वह अर्थ यहां नहीं बैठता जो शब्दकोशों में दिया गया है । अर्थ-निर्णय में सन्दर्भ आदि को ध्यान में रखते हुए गहराई से विचार किया गया है । अन्यत्र प्रयोग से भी शब्द के अर्थ-निर्धारण में सहायता मिलती है । इसके लिए अन्य कवियों की रचनाओं का आलोड़न-विलोड़न किया गया है ।

'शब्दकोश' की योजना में काफी श्रम किया गया है । शब्द का अर्थ करने में पूरी सावधानी बरती गई है फिर भी, परिमित ज्ञान के कारण त्रुटि हो सकती है जो अनजाने ही हुई होगी ।

संकेत

जय.- राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान की जयपुर शाखा की हस्तलिखित प्रति

जोध.- राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर की हस्तलिखित प्रति

सर्वत्र- आधारभूत दोनों प्रतियों में

[ ]- मूलग्रन्थ में इस कोष्ठक के बीच मुद्रित पाठ सम्पादक के सुझाव हैं।

X- प्रति में लोपसूचक

टिप्पणी-पाठान्तर में जहां प्रति का उल्लेख नहीं है वहां एक ही पाठ उपलब्ध हुआ है और पाठ-परिवर्तन स्वविवेक से किया गया है।

राजा जयसिंह कृत

काव्यरस

× इति श्री राजा जयसिंघ बिरचिते काव्यरसे गन बिचार रस निरूपनो नाम प्रथमोध्याय: ॥ 1 ॥

अथ नायक–वर्णन

साधारण नायक कौ लक्षण

रूप छबि सुंदर मलूकु है सुगंध रुचि

तरुन कुलीन परपीर हर हित मै ।

दान धीर सूर सील सिंघ जसमंत महा

जेतियै निकाई तेती भरी सब चित मै ।

कोककलाबिद और बहु बिधि चतुराई

संपति की अधिकाई सुखु करै नित मै ।

'जयसिंघ' येते गुन नाइकु कहावै सोई

ग्रंथनि निहारि कबि बरनौ कबित मै ॥ 40 ॥

नायक कौ उदाहरण

मूरति छबीली अति सूरति सुहाति सबै

देखै बस होत ऐसे अदभुत गति है ।

अनरस रस ल्यावै रसु करि बिलसावै

मानिनी तियानि हू की मोहि लेत मति है ।

सब गुन भरे पूरे बरने न जात क्योहू

केल कला नित नई जामै सरसति है ।

मोहन जू कामना के पूरन करनहार

'जयसिंघ' सेये निज तिहू लोक पति है ॥ 41 ॥

×. यहां से लेकर छन्दसंख्या 85 तक केवल (जोध.) में है ।
40-बिद-बिध ।

अथ नायक–भेद (दोहा)

प्रथम कह्यौ अनकूल कौ दूजौ दक्षिनु जानि ।
सठ कौ जानौ तीसरौ चौथौ ढीठु बखानि ॥ 42 ॥

अनुकूल कौ लक्षण

तिया येक अँग संग मै नही और सौ काजु ।
रीति यहै अनकूल की धरै महा जिय लाजु ॥ 43 ॥

यथा

सुंदरु बदन देखौ रामचन्द्र जानुकी कौ
मनु तोहि लियौ × × ।
× × ×
लालन लगनि चित ललचाइ लई है ।
और नारि तनकहू चितवै न 'जयसिंघ'
ऐसी अदभुत गति अति उर ठई है ।
दर्पन दरसि करि रीझत परसपर
दिन दिन दूनी दूनी पेखी प्रीति नई है ॥ 44 ॥

अनुकूल और परकीया कौ संवाद

चलौ जातु अनकूल है मिलै परकीया बाल ।
इनिकौ चितु लागै न, वह राखौ चाहै हाल ॥ 45 ॥

यथा

लाल चले जात कहाँ, चले जात निज गेह,
गेह जाइ कहा करौ इत पग धरिये ।
मेरे नैन निहचल लागे है ही येक ठौर,
सोई ठौर जैहै कहा मोहि न निदरिये ।
बिरह बिथा है तन करौ आइ उपचारु
× × तौ तौ कछू करिये ।

42- दक्षिनु-दछिनु ।
44- प्रथम एवं द्वितीय चरण का कुछ अंश छूट जाने से दोनों में घालमेल हो गया है ।

'जयसिंघ' राम तुम इहा क्यों न सुखु मानौ

सुख मानै ऐसे तौब काहे कौ अगरिये ॥ 46 ॥

दक्षिण कौ लक्षण (दोहा)

दक्षिन की सुभ रीति यह प्रीति समान जनाइ ।

रंजै मनु सब तियनि कौ रस की रीति बनाइ ॥ 47 ॥

यथा

येकु हरा हरि के उर मै तिन मागन कौ सब नागरि आईं ।

लालन तोरि दयौ करकै सम रीति समान डिठाई जनाई ।

यों तिनकौ मनु रंजि तहाँ 'जयसिंघ' उनकी मन की मनभाई ।

भौर लौ दौर करै सब ठौर सबै मन मानी है प्रीति सुहाई ॥ 48 ॥

शठ नायक कौ लक्षण (दोहा)

देखत ही अति हसि उंठै गाँसु तासु उर मानु ।

कपट निपट सठ कै निकट यो निहचै कै जानु ॥ 49 ॥

यथा

आवन साँझ गये कहि कै अग संग रहै रगि और निसोहै ।

देखत प्रीति जनावै महा परतीति बढ़ाइ करै अति सोहै ।

मोहन गाँसु सदा उर मै 'जयसिंघ' अबै किन देखत सोहै ।

नाह कौ नैकु निहारि कै नारि नवाइ कै नैन [ ] रिसोहै ॥ 50 ॥

ढीठ नायक कौ लक्षण (दोहा)

गारि दऐ बोलै बुरै हसि हसि अति तह देइ ।

लाज निपट नहि ढीठ कै आपु मानि सुखु लेइ ॥ 51 ॥

यथा

देखत है जिहे हसि बोलत है तासों, पहि-

चानि जानि नाही रस बैन रटियतु है ।

तजी कुलकानि लोक लाज सो न काज तहाँ

निपट ढिठाई दै दै दिन अटियतु है ।

47- रंजै-रजै ।

ऐसी अटपटी टेउ लई कान्ह 'जयसिंघ'
पनिघट घट भरे लाज घटियतु है ।
बड़े औटपाई सु अठाबनि की गति ठाई
घाट बाट हसि ऐसे ठाट ठटियतु है ॥ 52 ॥

साधारण नायिका

नागरि नागर रूप उजियार भूषन जोबन जा अति रोहै ।
देखै लगै मनु भावति है छबि रीझि बढ़ाइ कै नैननि मोहै ।
सारी सुगंध बनी 'जयसिंघ' सु केलि कला सम दीजतु को है ।
ऐसियै नारि निहारि गुनी बरनै तिह कौ जिहे बरनन सोहै ॥ 53 ॥

अथ नायिका–भेद (दोहा)

त्रिबिध भेद है नाइका तिनकौ कहौ बखानि ।
सुकिया परकीया कही सामान्या पुनि जानि ॥ 54 ॥

यथा स्वकीया

लाज लियै रहै सुभ लछन निकाई सब
सील मै सुभाई सदा येक रीति पेखिये ।
बात कहै जिह सौं स्रवन लौ भनक ताकै
ईषत सी मुसिक्यानि अधर उरेखिये ।
पति ही सौ रति ही मै सकुच जनावति है
अति ही सुधाई तन मन जाकै लेखिये ।
'जयसिंघ' ऐसी बाम कान्ह कै बिराजै संग
जाकी सम सर काजै दूसरी न देखिये ॥ 55 ॥

मध्य (वय:संधि) कौ लक्षण (दोहा)

सिसुता मै जोबन किरन जानि जनैया लेइ ।
अतर मिलौनी बासु ज्यौ कछु न जनाये देइ ॥ 56 ॥

54-सुकिया-सुकीया ।

वय:संधि कौ उदाहरण

खेलति है पुतरीनि कबहू सहेलिनि मै
कबहुक मुसक्याइ सहज सुभाइ कै ।
जैसै नीरु छीरु मिलै जानतु मराल तैसे
कान्हु जानै सिसुता मै जोबन बनाइ कै ।
ऐसे और राग और राग कौ मिलतु सुर
'जयसिंघ' महाजान देत समुझाइ कै ।
जैसै नैन रूप बसै जानत जनैया तिहे
तैसे कामकला तन भई कछू आइ कै ॥ 57 ॥

(दोहा)

मुग्धा मध्या प्रगलभा स्वीया त्रबिधि बखानि ।
सडर सलज रति रुचि अधिक तिनके लक्षन जानि ॥ 58 ॥

मुग्धा कौ लक्षण (दोहा)

लाज लिऐ सकुचै बहुत रति कौ बहुत डराइ ।
मुग्धा की यह रीति है तिहि कौ देतु बताइ ॥ 59 ॥

मुग्धा कौ उदाहरण

बूझति है रस की बतियाँ फिरि भूल तहाँ लगे खेलन कौ ।
कछु नैननि चंचलताई भई मुसिक्यानि जनाई सहेलिन कौ ।
भई लखावत है 'जयसिंघ' उठै छतिया पति खेलन कौ ।
उर पै रहै कान्ह कहू दिन मै भई बाँहनि ग्रीवहि मेलन कौ ॥ 60 ॥

(दोहा)

प्रथम कहौ द्वै भाँति सौ जोबन कौ निरधार ।
इक अज्ञातजोबन कहै गृंथनि मै जु बिचार ॥ 61 ॥

अज्ञातयौवना कौ लक्षण (दोहा)

जोबन जोति सरीर मै नैकु न जानै नारि ।
तिहि अज्ञातजोबना कहै गृंथ निरधारि ॥ 62 ॥

58-लक्षन-लछन ।
60 बतियाँ-बतीयां । छतिया-छतीया ।
62-निरधारि-निरधार ।

अज्ञातयौवना कौ उदाहरण

थके लौ चरन परै सखी कहौ कहा आइ
कटि होति जाति छीन छाती लगै भारी सी ।
अखियाँ चपल भई बैन गरवात जात
दिना चारि पाचक तै गति भई न्यारी सी ।
जानी न परति मोहि काहे तै है 'जयसिंघ'
हित की बतावै सोई प्यारी अधिकारी सी ।
आली कहौ हसि येहु टौना भयौ मोहन कौ
जोबन की कांति कछू अतन पसारी सी ॥ 63 ॥

ज्ञातयौवना कौ लक्षण (दोहा)

उमगे उरज निहारि कै हरपि तहा मुसक्याइ ।
केलि मेलि कौ चितु करै ज्ञातजोबना आइ ॥ 64 ॥

ज्ञातयौवना कौ उदाहरण

सुधारे सम्हारि बार सँवारति मोती हार
मार की छये ते दुति मति औरई ठई ।
पति संग बसै रति बातै पूछ तिनहू सौ
प्रगट जनावति जु चोप चाह है लई ।
कान्हहि निहारि मुसकाइ जाइ 'जयसिंघ'
अंग छबि देखियतु औरै दिन ही मै नई ।
अखियाँ तरल भई धीरियै चरन गति
गति भई जाकै सीरी छाती पिय की भई ॥ 65 ॥

यौवनोदय कौ उदाहरण

अदभुत गति लई देखी अति छबि छई
रति हू कुच ठई नैननि खगत है ।
'जयसिंघ' अरुनई पेखियतु दिन नई
चतुरई दई दई सोभा उमगत है ।

कहौ कहा मति भई सोहन हू मोहि गई

गई सुधि लालन की मग मै डगत है ।

जगमग्यो जोबन जराइ जे बहूतै जोति

जोरिबे कौ जोरा नाही जुवती जगत है ॥ 66॥

यथा

जोबन गुमानु गज गैन चलै आगमनै

भ्रकुटी जनाई मानौ आँकुस मदन के ।

पिक बैन नैन सैन दैन मैन बान मारै

'जयसिंघ' किये बस आपनै सदन के ।

नन्द के लला की डीठि लागी तुम्है राधिकाजू

बहुत दिखाई बाल आनन हदन के ।

देखत नबीली भई मोहन कों मोहिनी तू

लालन के नैन भये तेरेई बदन के ॥ 67 ॥

यथा

रैनि दिन येक से लखत मनमोहन है

कान्ह कौ रिझावत करत आपु बस के ।

करै जल बास तऊ होत न बराबरि है

'जयसिंघ' यातै बे गनै न जात जस के ।

जतन अनेग करि थाके अति मेरे जान

नलिन मलिन होइ हिय माझ कसके ।

सलज सलौनै चतुराई भरे भाँति भाँति

तेरे नैन ऐन सुख दैन मैन रस के ॥ 68 ॥

मध्या कौ लक्षण (दोहा)

सकुच काम सम देखिये प्रगट जनावै भाइ ।

ये लक्षन जिहि मै लखौ मध्या सोई आइ ॥ 69 ॥

66- अंतिम तीन चरणों के अन्त में 'है' के स्थान पर 'मै' पाठ है ।

68- कसके-ककसे ।

69- लक्षन-लछन ।

मध्या कौ उदाहरण

सुंदर नवीली अलबेली है सहेलिनि मै
अधर सुरंग रंगु सौतिनि के साल कौ ।
मूरति छबीली सो लजीली है रगीली महा
रस अटकीली भाये मटकीली बाल कौ ।
मोहनी कौ रूपु जाइ रति अति रद आहि
'जयसिंघ' मोहनजू चाहत रसाल कौ ।
गरब गहीली अरबीली सु बसी है उर
चाहनि गसीली सो गसी लौ लगी लाल कौ ॥ 70 ॥

मध्या कौ उदाहरण

मोहन के अँग संग जगी रस रंग पगी सु अनंग की घातै ।
बूझत ही जु करै कछु फेरु सौ साथिनि कौ बहरावति का तै ।
पीक लगी 'ज़यसिंघ' लखी पल सोहति है मनु मोहति जातै ।
प्यारी तिहारी निहारनि मै हम जानि लई सब राति की बातै ॥ 71 ॥

मध्या उन्नता

जोबन नबेली बै सहेलिनि मै अलबेली ।
अति ही सु हेली रहै मैन मदमाती है ।
कान्ह की न पीर पावै आपनै ही जीय माझ
अंबुज से नैन बनी सीफल सी छाती है ।
पहिरे है स्याम सारी बस करे 'जयसिंघ'
हमकौ बतावो तेऊ रूप सरसाती है ।
छ़बि कै अपार तहाँ उझकि झरोखनि हू
चंद से बदन कौ ये झाकि झाकि जाती है ॥ 72 ॥

और उदाहरण

अदभुत गति करै चितहि चकित अति
चख मख लाऐं देखै सुंदर महा गनै ।
अंबुज सहित अलि मनौ नही हलचल
अधपल निरखत कियै रस अपनै ।

70-रसाल कौ-रसाल है ।

72-झाकि झाकि-झाखि झाकि ।

अजहू न सुधि लेइ क्यों न उन्है सुख देइ
'जयसिंघ' मोहन जू चाहत है तो घनै ।
पंचबान लै कमान छोड़ै तहाँ पंच बान
तेरे नैन बान मौहो मोहत भलै बनै ॥ 73 ॥

प्रौढ़ा कौ लक्षण (दोहा)

कामकला मै चतुर अति पति कौ रति सुखु देइ ।
नैन रिझावै नाह के प्रौढ़ा बस करि लेइ ॥ 74 ॥

प्रौढ़ा कौ उदाहरण

नागरि सरस रूप तासों लगे लाल नैन
ऐन मैन रस पगे सोभा कौ सदनु है ।
कोकिल विसेपै बैन सोहत है गज गैन
अधर बिराजै लाग्यौ पिय कौ रदनु है ।
वारि डारौ रंभा और मैनका तिलोतमा सी
'जयसिंघ' बस किये मूरति मदनु है ।
कान्हजू के संग तू तौ करत अनेग रंग
अंग तेरौ चाँदनी सौ चंदु सौ बदनु है ॥ 75 ॥

विपरीति–वर्णन

दंपति संग करै रति रंग उमंग करी बिपरीतिक लोलनि ।
डारति है जयमाल मनौ रति हारु हलै उर बाल की डोलनि ।
देखति है दुरि कै सखिया सुधि द्वावन फि कै हसि बोलनि ।
कान्ह की रीझ भई 'जयसिंघ' सु मोहि रहे लखि गोल कपोलनि ॥ 76 ॥

प्रौढ़ा–सुरतांत

किलकनि हसनि बसनि पिय मन भई
दसन दमक दुति दामिनी सी लेखिये ।
गोरेई बदन रही लाली अधरनि तहाँ
कान्ह के रदन छद परगट पेखिये ।
कंचुकी कसनि अति खसनि लसनि ओरे
मरगजे बसन कपोल पीक रेखिये ।
'जयसिंघ' नैननि मै बैननि मै गैननि मै
सुरत जनाये चीन्ह तुरत ही देखिये ॥ 77 ॥

76-फि कै-दो अक्षर छूटे हुए हैं ।

पतिव्रता कौ लक्षण (दोहा)

पीतम सुख जिहि बिधि लहइ सो सुखु लखै सिहाइ ।
पिय की कही न टारई पतिव्रता सौ आइ ॥ 78 ॥

पतिव्रता कौ उदाहरण

सुंदरता छबि कै रिझावै नैन मोहन के
तन मन ताही पर धनु बलिहारी है ।
मांही के रहौ लै करि [ ] सुभाउ चलौ
'जयसिंघ' बह बाम मोहनी निहारी है ।
रूप गुन जोवन जु ताही कौ रच्यौ हैं बिधि
पीउ जीउ मगन ह्वै लगनि तिहारी है ।
ताही के चरन बंदौ ताही पर तोरौ तिन
प्यारे की जु प्यारी सु तौ मेंरं अति प्यारी है ॥ 79 ॥

इति श्री राजा जयसिंघ बिरचिते काव्यरसे नाइक नाइका अवस्था बर्ननं नाम द्वितीयोध्याय : ॥ 2 ॥

अथ धीरादि भेद–वर्णन (दोहा)

मुग्धा मै धीरजु नही मध्या ताही रीति ।
ऐसै ही प्रौढ़ा कहै त्रबिधि मान सो प्रीति ॥ 80 ॥

मध्या के धीरादि भेद–लक्षण (दोहा)*

बैर बहानै धीर कहि अनधीरज रिस होइ ।
धीरअधीरै रिस रसै मध्या जानौ सोइ ॥ 81 ॥

मध्या धीरा, यथा

देखत ललौहै 'जयसिंघ' सु मिलौहै होत
लागत भलौहै कान्ह प्रेम ल्याइयतु है ।
हमै बहरौहै आवै कछू झपकौहै भये
और के बसौहै सौहै यों जनाइयतु है ।

78–पिय–पीय ।
80–ताही–ताहि ।
* प्रति में शीर्षक नहीं है ।

काहू तन परसौहै लगै लोभ सरसौहै

सुख रस बरसौहै अति भाइयतु है ।

नैन तिरछौहै अलसौहै सकुचौहै गोहै

रैनि के जगौहै कैसी छबि पाइयतु है ॥ 82 ॥

मध्या अधीरा, यथा

रैनि रहे कहू और के धाम सु सोवन को उठि मेरे हाँ आये ।
जाउ पिया फिरि ताही के हाँ जिहि जामिनि चारिहू जाम जगाये ।
मोहन रावरे देखि लये 'जयसिंघ' कहा इतनै गुनपाये ।
भावति है तुमको तुम ताही कौ जाही के रंग मै नैन रँगाये ॥ 83 ॥

मध्या धीरा–अधीरा, यथा

पीतम राति रहे जिहि कै तिहि सो कहिकै कहा मेरे हाँ आये ।
पाइ धरे इत कौ जु बनाइ भले ये सुभाइं न जात गनाये ।
कैसैहू आवत हो 'जयसिंघ' सु मोहन मोहत मो मन भाये ।
अंजनु औठ है जावक भाल सुहाये हैं लाल ये चीन्ह पराये ॥ 84 ॥

प्रौढ़ा के धीरादि भेद–लक्षण * (दोहा)

धीरा कौ रति रुचि नहीं बिनधीरज खुनसाइ ।
धीराधीरा प्रेम रिस प्रौढ़ा के ये भाइ ॥ 85 ॥

प्रौढ़ा धीरा कौ उदाहरण×

कान्ह कही किन पान खवावो बढ़ावो न रंगु जनावति ढेरौ ।
देखत हीं हँसि देति हती 'जयसिंघ' जनाइ कै प्रेमु घनेरौ ।
बात कहौ इत कौ चितु कै पुनि नेंकु निहारि तहाँ द्रग फैरौ ।
जानी न जाति कछू हमकौ तुम काहे तें मो तन सोंहें न हेरौ ॥ 86 ॥

82–प्रेम–प्रैमा ।
83–रावरे–रावर ।
*–हस्तलिखित प्रति में शीर्षक 'प्रौढा कौ लछन' है ।
×–(जय.) प्रति यहाँ से प्राप्त हुई है ।

प्रौढ़ा अधीरा

रैंनि रहे अँग संगहि और कै रंगु तिहारौ बन्यौ बहुतेरौ ।
प्रीक लगी पल अंजन ओंठ सु जावकु भाल है सुंदरि केरौ ।
मोहन जाउ तहाँ 'जयसिंघ' सु काजु बिना करौ काहे कौ झेरौ ।
नीद कै भार नवै पलकै हम नेंन निहार्‌यौ है नेहु घनेरौ ॥ 87 ॥

प्रौढ़ा धीरा–अधीरा

जागे के प्रगट चीन्ह बैन कहौ अलसात
बिन गुन अदभुत सोही उर माल है ।
कंकन बिराजै पीठि तिन्है देखि डीठि लगै
अंजनु कपोल पर देखियतु हाल है ।
सौतिनि के उर के दिखाए चीन्ह इहा आनि
मोहन ए अति कै सलाए हमै साल है ।
वाके किन धाम जाउ छिनकु न रहौ इत
'जयसिंघ' जाके रस छके द्रग लाल है ॥ 88 ॥

अथ ज्येष्ठा–कनिष्ठा (दोहा)

पीतम की निज प्रीति जहँ कही जेष्टा ताहि ।
प्यारु घटै जिहि नारि सों उहै कनिष्टा आहि ॥ 89 ॥

तिन कौ उदाहरण

नागरि नलिन नेंनी पिक बैनी गज गैनी
चंद से बदन बैठी कान्ह के भवन में ।
'जयसिंघ' सबसों कही कै पान फूल ल्यावो
नवला कौ सैन दीन्ही उनके गवन में ।
आगें चली और पीछै रही तिहि ठौर उह
नाह गही बाँह ऐसौ नेहु है न उन में ।
औरै देखि अनख्यानी मुरझानी यह जानी
ऐसे गुन भरे बहु रवंनी रवन में ॥ 90 ॥

अथ परकीया–वर्णन (दोहा)

दो बिधि परकीया कही क्वारी अरु परजोइ ।
मुग्धा मध्या भेद द्वै क्वारी के तहँ होइ ॥ 91 ॥

मुग्धा सरस कुमारिका

खेलन कौ नित जाति उतै मिसु कै पुतरीनि सहेलिनि लैकै ।
चंचल नैंन नहीं थिर गैन न जोबन आयौ अयानु बितै कै ।
मोहत मोहन कौ 'जयसिंघ' ठगै तिनि कौ जे न जानै हितै कैं ।
प्यास सी चाह बढ़ी तब तै जब कान्ह कढ़े उहि वोर चितै कैं ॥ 92 ॥

मध्या सरस कुमारिका

बूझति है कबहूँ औ' कबहूँ दुराउ करै
जिय की लगनि चोंप जानी जाति तबही ।
बैननि जनावै प्रेमु बिन देखै कल नाही
लाज तजि सकति न पेखी गति अबही ।
मोहन की मूरति लगी है नैंन 'जयसिंघ'
दुरि कै दरसु चाहै ठौरु पावै जबही ।
कुलकानि बैरनि के आगें न बसाइ कछू
क्यौंहूँ न सुहाइ, फिरै चकित सी सबही ॥ 93 ॥

परोढ़ा* , यथा

अलिनि के साथ गई कुंजनि की बीथिनि में
मोहन के देखें लोक लाज तजी चितही ।
कुलकानि भगी रंग पगी है अनंग हू कै
गुरजन दुरजन डरु छोड्यौ नितहीं ।
ठाढ़ी होति साम्ही लालै इक टक चाहि रहै
'जयसिंघ' मगन ह्वै लगनि है तितही ।
माती सी फिरति पै धरति नही पल कल
नही हलचल ऐसी गति भई हितहीं ॥ 94 ॥

\- हस्तलेखों में विषय का निर्देश नहीं है ।
94- अलिनि के साथ-अलिनि साथ (जोध.) ।

अथ स्वयंदूतिका कौ लक्षण (दोहा)

नागरि पिय सों सैन दै भैंटै घात लगाइ ।
सुयंदूति तासों कहै जाके है ए भाइ ॥ 95 ॥

स्वयंदूतिका कौ उदाहरण

दुपहरी जेठ की सु भई है निसून अति
नर नारी दुरें छाँह कढ़त न घाम मै ।
जमुना निकट हम चली पनिघट काजै
साथ कोऊ नाही यों सुनाइ कही बाम मै ।
सुनत ही बैन तहाँ चलहै झपट हरि
कुंजन की वोट मनु चोंप केलि काम मै ।
इहि बिधि मोहन वुलाइ लए 'जयसिंघ'
ऐसी घात बनति न क्योंहू निसि धाम मै ॥ 96 ॥

अथ उपपति

सूनै धाम वींथिनि फिरति बन उपबन
रति कौ अरति कियै बस कान्ह काम कै ।
अधरात पछ गत घात करि तहाँ जात
पनिघट माँझ ठाढ़े रहै रस बाम कै ।
मोहन की यह रीति देखी तहाँ 'जयसिंघ'
अखियाँ अरुन भई जागै चारौ जाम कै ।
चोरी ही में जीउ अरु लाज तजै काजु करै
लोगनि कौ सोचु न डरात धरै नाम कै ॥ 97 ॥

अथ सामान्या कौ लक्षण (दोहा)

पावत धनु अति रसु करै नही काम सो काज ।
सामान्या तासों कहै जाकै नेंकु न लाज ॥ 98 ॥

वैशिक, सामान्या, यथा

लाल मिलौ चाहौ तौ पै कही करौ मेरी सब

तब वाहि पावो जाहि चाहत हौ मन मै ।

भूषन बसन और नग अनगन देउ

दीबे में बिचारु कछू करौ जनि धन मै ।

जबही बुलावो तब जाइ कै लै आऊँ वाहि

सुखु कीजै अतन कौ लाइ तन तन मै ।

अति हीं प्रबीन गान बाद अरु नृत करि

बैसिकु रिझाइ लेत तहाँ एक छिन मै ॥ 99 ॥

इति श्री राजा जयसिंघ विरचिते काव्यरसे धीरादि भेद सरस निरस परकीयादि सुयंदूतिका उपपति बैसिक बर्ननं नाम त्रितीयोध्याय: ॥ 3 ॥

अथ यौवन उमंग कौ लक्षण (दोहा)

भूपन जोबन बसन गुन रूप पिया कौ प्यारु ।

इतनें तें जोबन उमग होइ तहाँ निरधारु ॥ 100 ॥

यौवन उमंग कौ उदाहरण

भौहनि कमान मख दियें जिहि उनमान

मोहनी यौं सौतिनि कौ जीतति गुमानु है ।

जोबन उठान भये तज्यौ रति अभिमानु

जांके नेंन पैनें ऐन मैन के से बान है ।

घूँघरू औ' नूपुर नगारे बजे 'जयसिंघ'

जाहिरि जनायौ जोरु अधिक अमान है ।

खुटिला कौ गाजै जानि चपला समान बान

कान पान भये आनि काम के निसान है ॥ 101 ॥

99- नग-नगै (जय.) ।

101- मोहनीं यौं सौतिनि-मोहन जा सौतिन (जोध.) । तज्यौ-तजौ (जोध.) । के से-हू के (जोध.) ।

अथ अष्टनायिका

जे बरनी है नाइका आठ भाँति ते जान ।
सो प्रकार अब कहत हौ ग्रंथनि के उनमान ॥ 102 ॥
स्वाधीना अभिसारिका बासकसज्जा जानि ।
कलहंतरिता खंडिता बिप्रलब्ध पुनि मानि ॥ 103 ॥
प्रोपितपतिका है कही उत्कंठिता 'रु होइ ।
आदि कबिनि के मत इन्है बरनत है सब कोइ ॥ 104 ॥

स्वाधीनपतिका कौ लक्षण (दोहा)

पीतम बस जाकै रहै हिए मानि कै प्रीति ।
स्वाधीना सोई कहै जाकी है यह रीति ॥ 105 ॥

स्वाधीनपतिका कौ उदाहरण

भावति है सब तें 'जयसिंघ' जु सुन्दरता रस प्रेम घनेरौ ।
नारी सबै सम तारनि की तहँ चंद समान भयौ मुखु तेरौ ।
मोहन मोहि किए बस आपनै भूलि तही न करै कहूँ फेरौ ।
भोहनि सोहनि तो इनि ही जब लोइनि कौइन गौइन हेरौ ॥ 106 ॥

अभिसारिका कौ लक्षण (दोहा)

प्रीति हियै करि पीय पै जाइ कै लेइ बुलाइ ।
सो कहिए अभिसारिका जाके है ए भाइ ॥ 107 ॥

अभिसारिका कौ उदाहरण

फिकरत स्यार और बोलत है घूघू घनै
सिंघ की गरज महा रही भरिपूरि कै ।
भादौ निसि अधियारी घटा झूमि आई तहाँ
बरषतु मेहु न दिखाति धरा धूरि कै ।
नागरि कठिन हियौ जाति चली पीतम पै
रोंदति है ब्याल सीस डारति है चूरि कै ।
कंटक गड़त पग जानत न 'जयसिंघ'
नाकति पहार न गनति मगु दूरि कै ॥ 108 ॥

102- ते जान-जे जानि (जोध.) ।
103- स्वाधीना-स्वाधीन (जोध.) । कलहंतरिता-कलहंतरिका (जोध.) ।
108- फिकरत स्यार- फिकरत है स्यार (जोध.) । अधियारी-अध्यारी (जोध.) । पहार-पाहार (जोध.) ।

ज्योत्स्नाभिसारिका

चंदनु चढ़ाइ चुनि पहिरी है सेत सारी

चौसरु चमेली चारु चतुरई चाह सों।

मोतीहार घनसार घसि कै लगायौ अंग

हीरामय आभरन पहिरे उछाह सों।

चंदु सौ बदनु सोहै सुधा अधरनि तहाँ

हँसनि किरनि मिली जौन्हहि उमाह सों।

नेंनऊ नलिन मनु मोहत है 'जयसिंघ'

मगंन हो चली प्रीति लगी कान्ह नाह सों ॥ 109 ॥

दिवाभिसारिका

ग्रीपम के घाम लगै नर छिपै धाम धाम

पसु पंछी जीउ सब छाहनि गहत है।

नारी बसी चित्रसारी कहूँ न निहारी जाइ

तपन लपट लियें पवन बहत है।

बंसीबट तट चली जमुना निकट स्यामा

पनिघट मिस जित पीतम बसत है।

'जयसिंघ' ऐसी दुपहरी माँझ पाई बाल

मनमानै सुख मनमोहन लहत है ॥ 110 ॥

वासकसज्जा कौ लक्षण (दोहा)

पान सुगंध मगाइ कै राखै सेज सँवारि।

पिय आवत मन में समुझि बासकसज्जा नारि ॥ 111 ॥

वासकसज्जा कौ उदाहरण

मंदिरु झराइ चारु चाँदिनी बिंछाइ, दीपु

अगरु जराइ तहाँ ठान रस के ठनै।

मंजनु कै घनुसारु अंजनु दियौ सँवारि

बारनि सुधारि हार भूपन सबै बनै।

109- चतुरई-चतुराई (जोध.)।

110- लपट-पलट (जोध.)।

111- सँवारि-सम्हारि (जोध.)।

सेज बिछवाइ पान फूल ल्याइ 'जयसिंघ'

कान्ह मिलिवे के काज कुच कंचुकी तनै ।

द्वारहू लौ जाइ आगे सखी पठवाइ जहाँ

खबरि मगाइ आवै बीस विसै है मनै ॥ 112 ॥

कलहांतरिता कौ लक्षण (दोहा)

रिस करि कै पिय सों तहीं फिरि पीछे पछिताइ

कलहंतरिता जो कही तिह कौ कहौ सुभाइ ॥ 113 ॥

कलहांतरिता कौ उदाहरण

बागै बीरा बनि ठनि कैसें आए तेरे धाम

मैन रस बैन कहै अति मुसक्याइ कै ।

देखि देखि तेरौ रूपु ठौर ठौर बनी ठनी

रीझि रहे 'जयसिंघ' बहुत सिहाइ कै ।

ऐसी प्रीति माँझ तूँ कलहु कियौ मोहन सों

उठि गए पीउ तहाँ जिय में रिसाइ कै ।

पूँछत हौ हमै कहा समुझौ न तब क्योंहू

करिहौ 'ब कहा इहि भाँति पछिताइ कै ॥ 114 ॥

खंडिता कौ लक्षण (दोहा)

और तिया के भोग कौ चिन्हु लएँ पिय जाइ ।

सो कहियतु है खंडिता देखि तहाँ अनखाइ ॥ 115 ॥

खंडिता कौ उदाहरण

जामिनि जगे की प्यारे आखें देखौ लाल लाल

जावकु लग्यौ है भाल टूटी माल उर मै ।

लटपटी पगिया है अटपटे पेच बनै

रँगमगे बैन सटपटे लगै सुर मै ।

113- कलहंतरिता-कलतरिका (जोध.) ।

114- माँझ-माह (जोध.) । न-(जोध.) में छूटा है । करिहौ-करिहों (जोध.) ।

115- लएँ-लग्यौ (जोध.) ।

झूठी सोंहै साँच काजै खात आनि आगे ही तें

वोर लौ निबाहि मति पाई कौन गुर मैं ।

'जयसिंघ' मोहन के गुन ऐसे जानि परें

धूत कलाँ पूरे रूरे लखे तिहूँ पुर मै ॥ 116 ॥

विप्रलब्धा कौ लक्षण (दोहा)

दूती हू के लै गयें पिय सों भेंट न होइ ।

विप्रलब्ध तासों कहें बिरह तपन तन होइ ॥ 117 ॥

विप्रलब्धा कौ उदाहरण

जोई जोई कही तुम सोई सोई करी हम

कहिबे कौ होती कै न मानी मेरीऐ कही ।

जहाँ कौ चलाई तहाँ उठि चली तेरे साथ

जैसियै उमाही तैसी तुरतं ही उमही ।

मोहन कहा है सो बताइ देउ 'जयसिंघ'

देखति न कहूँ करि देउ हमकौ सही ।

हित में धौ अति ही कहा कौ यह बैरु लयौ

और बेर काजै बात तेरी हमहूँ लही ॥ 118 ॥

प्रोषितपतिका कौ लक्षण (दोहा)

पीउ गयौ जब दूरि कौ दुख्खु तहाँ मन होइ ।

प्रोपितपतिका नाइका ग्रंथनि कहिए जोइ ॥ 119 ॥

प्रोषितपतिका कौ उदाहरण

चंदनु औ' चाँदनी' रु चंदऊ न नीकौ लागै

घनसारु लाये तन तपति जनावई ।

वोरेऊ उसीर वोस अंबुज गुलाब और

भूपन भवन सेज नही चित आवई ।

116- प्यारे-प्यारी (जोध.) । वोर-और (जोध.) । परें-पर (जोध.) । लखे-लिखे (जोध.) ।
118- जोई जोई-जोई जेई (जोध.) । लही-लई (जोध.) ।

बात न सुहाइ मन कैसहूँ न बहराइ
　　　　. रहै मुरझाइ काम बाननि सतावई ।
निसि माह नीद नही आवति है 'जयसिंघ'
　　　　कान्ह बिन मोकों सखी कछुवै न भावई ॥ 120 ॥

उत्कंठिता कौ लक्षण (दोहा)

अवधि चाह पिय मिलन की होइ जहाँ उर आनि ।
सो कहिए उतकंठिता जाकी है यह बानि ॥ 121 ॥

उत्कंठिता कौ उदाहरण

आवै ऐसी मन हीं जु हिए सों लगाइ राखौ
　　　　जौ पै पिय प्यारे काजै पाऊँ इहि ठौर कै ।
साँझ ही में आवै कैधौ आइ जाइ जामहू में
　　　　अब लौ न आए किधौ झेरु भयौ और कै ।
वे तौ बहुनाइक सबनि चाहें 'जयसिंघ'
　　　　. तेई गुन भरे जेई गुन भरे भौर कै ।
जिय में हुलासु इहि भाँति होत मेरी आली
　　　　अंग संग रंग करौ कान्ह सिरमौर कै ॥ 122 ॥

प्रवत्स्यत्भर्तृका कौ लक्षण (दोहा)

चलन लगै परदेस पिउ सुनि तिय अति अकुलाइ ।
पति समीप बिरहा दहै प्रवत्सभर्त्तिका आइ ॥ 123 ॥

प्रवत्स्यत्भर्तृका कौ उदाहरण

खेलति हँसति किलकति बिहसति अति
　　　　अलिनि सों मिलि मिलि रही रस रंग में ।
नीकी नीकी बतियाँनि कहि बूझि 'जयसिंघ'
　　　　चितु केलि पीतम के किसा परसंग में ।

120-तपति-तपनि (जोध.) । जनावई-जनाई (जोध.) । आवई-आवही (जोध.) ।
सतावई-सतावही (जोध.) । भावई-भावही (जोध.) ।
122- सबनि-(जय.) में दो बार लिखा है ।

कान्ह आनगाउँ कौ चलनु भयौ तेही समें
काहू है सुनाई यह सुख की तरंग में ।
जल तें कमल न्यारौ मुरझातु पलु पलु
तामें नहीं हलचल राधिका के अंग में ॥ 124 ॥

(दोहा)

नवी नाइका है कही भानदत्त निरधारि ।
प्रवत्सभर्त्तिका नाउ धरि काढ्यौ भेदु बिचारि ॥ 125 ॥
तेही रीतिनि सोधि हम दसई काढ़ी और ।
आगच्छतपतिका कही सो जनाइ इहि ठौर ॥ 126 ॥

आगच्छतपतिका कौ लक्षण* (दोहा)

मिलै पीउ दिन दोक मै आवत सुनियों बाम ।
आगच्छतपतिका कही सुखु पूरति है धाम ॥ 127 ॥
कही है प्रमान अष्टनाइका भरतमुनि
भानदत्त कही रसमंजरी बनाइ कै ।
पीउ चलिबे कों होइ जाकौ परदेस कौं
नवीं प्रवत्सभर्तिका दई है सो गनाइ कै ।
आइ चुक्यौ नही घर आवत सुन्यौ है कंतु
दसई कहत 'जयसिंघ' समुझाइ कै ।
आगछतपतिका कहावै इन रीतिनि सों
नवी मानौ त्योंही दई दसई जनाइ कै ॥ 128 ॥

आगच्छतपतिका कौ उदाहरण

मोहन बिदेस गए राधिका कौ कल नाही
दिन दिन छीन मीन जल बिन जो रहै ।
भूपन बसन फूल भावै नही मूल ही ए
जमुना के कूल सूल बाढ़ि बिरहा द्रहै ।

124-कौ-(जोध.) में छूटा हुआ है । है-पै (जोध.) ।
126-आगच्छतपतिका-आगछतपतिका (सर्वत्र) ।
शीर्षक हमने दिया है ।
127-आगच्छतपतिका-आगछतपतिका (सर्वत्र) ।
128-अष्टनाइका-अष्टका (जोध.) ।

'जयसिंघ' सावन के आवन में सुखदाई
आवन की बात मनभावन अली कहै ।
बाल हाल हौ निहाल मिलै लाल प्रतिपाल
दुतिया के चंद सम दीपति महा गहै ॥ 129 ॥

गर्विता कौ लक्षण (दोहा)

जोबन रूप 'रु प्रेम गुन जो नारी गरवाहि ।
चारि भाँति की गर्बिता बरनि बताऊँ ताहि ॥ 130 ॥

यौवनगर्विता कौ उदाहरण

छकी सी रहति काहू ल्यावति न मन माँझ
जोबन गरबु कहा एतौ कीजियतु है ।
रूप कै सरस सुख रसनि बरस एकै
गुन कै सरस ते दबाइ लीजियतु है ।
बोलति न सूधै और हेरति न नीचौ कहूँ
एतौ अभिमानु चित अति कीजियतु है ।
'जयसिंघ' मोहन के नेंक चाहें इतराति
दिन दिन मानौ मैन मद पीजियतु है ॥ 131 ॥

रूपगर्विता कौ उदाहरण

आननु मेरौ कहें ससि सों अरु चंपक रंगु कहै तन गोरें ।
खंजन मीन कहै द्रग कौ सम भूलत भौर है कंज के भोरे ।
कोकिल बैनी कहै 'जयसिंघ' सु पीति जनाइ कै मोहि निहोरे ।
जानै जू कान्ह सयानें घनै जब ए उपमा हमकौ गहि जोरै ॥ 132 ॥

प्रेमगर्विता कौ उदाहरण

जैसें दोइ सलिताँ चलति एक हो करिकै
तन सों पगत तन ज्योंहीं पल पल कौ ।

129-छीन-छिन (सर्वत्र) । कहै-कही (जोध.) ।
130-गुन-रस (जोध.) । गरवाहि-गरवाइ (जोध.) । बरनि-बर्नि (जोध.) ।
132-जानै-जनै (जय.) । सयानें-सयान नै (जोध.) ।

मेरे अंग संग रहै चैनु उन्है तौही लगु

जैसें मीन छीन लहै जीवन तें कल कौ ।

मोमह तौ इतनी निकाई नही 'जयसिंघ'

कान्ह की अचल प्रीति नही हलचल कौ ।

लालन कौ मनु मेरौ ऐसौ मिलि गयौ जैसें

नैंन नैंन लगे और रंग मिलै जल कौ ॥ 133 ॥

गुणगर्विता कौ उदाहरण

नागरि करति और हम सों अकस आनि

आवै मुहे हाँसी तहाँ कहा अनखाति हौ ।

तुमही सुभाउ लयें चलौ किनि पीतम कौ

लेहु बस करि हाथ काहे कौ रिसाति हौ ।

ल्याऊ न बुलाइ नही राखति हौ बाँह गहि

कान्हहि रिझावै सोऊ उन्हहि सुहाति हौ ।

लाल कौ बरजि आपु संग राखौ 'जयसिंघ'

बादु करौ और ही सों बादि सतराति हौ ॥ 134 ॥

मानी नायक+–वर्णन (दोहा)

दो बिधि के मानी कहे अपनै रस की रीति ।

रूपगर्व गौं आपनी करै सुहाती प्रीति ॥ 135 ॥

रूपगर्व मानी कौ उदाहरण

भूपन सेज तहाँ 'जयसिंघ' सु पान सुगंध सँवारे खरे ।

कान्ह कौ देखि कलोल करै अति काननि बैन बनाइ भरे ।

प्रेम उमंग अनंग के रंगनि संग कौ चाहि उपाइ करे ।

ऐसौ गुमानु कर्‌यौ सजनी मन में कछु ल्याइ न पाइ धरे ॥ 136 ॥

+ नायक-नाइका (जोध.) ।

135-रूपगर्व-रूपगर्वि (जोध.) ।

अपनी गौं कौ मानी

प्रीति भई कहूँ और ही ठौर सु राधिकाजू यह बात चलाई ।
बैनु सुनायौ है कान्ह के कान में काम की केलि की चाहि भलाई ।
मानु न आनै कहूँ मन में तहँ आपु चलाई है मान कलाई ।
लेहि बुलाइ रहै तिहि कै 'जयसिंध' या घात बनाइ मिलाई ॥ 137 ॥

चारि जाति नायिका–वर्णन (दोहा)

प्रथम कहत है पद्मिनी और चित्रनी नारि ।
वरनि संखिनी हस्थिनी तिनके चिन्ह विचारि ॥ 138 ॥

पद्मिनी कौ उदाहरण

हंस गति जामें दुति तम में उदोतु करै
अंग बासु सोंधे कैसी कंज बासु मुख की ।
भँवर भवत मानौ वारनै करत जात
अदभुत छवि है हरनिहार दुख की ।
मोहनी मूरति पिक बैन मृग नैंन दनै
करति है डीठि उत पीतम के रुख की ।
राधिका कुवरि पद्मिनी बनी 'जयसिंघ'
उमग बढ़ावै मनमोहन के सुख की । 139 ॥

चित्रिणी कौ उदाहरण

सोंहै स्याम चिहुर बदनु अति सुंदरु है
चंपक बरन तन कंज सम नेंन हैं ।
नासा कीर दामिनी दमक लौ है मुसक्यानि
स्रीफल समान कुच अरु गज गैंन है ।
बेल के सुमन कैसी बासु जाके आनन की
निपट चतुर चित मोर कैसे बैंन हैं ।
'जयसिंघ' चित्रनी चलति पिय मनु लियें
राधिका कुवरि कन्है ऐन सुख दैंन है ॥ 140 ॥

139- अदभुत-अदभुज (जोध.) । बैन-बैनी (जोध.) । कुवरि-कुमरि (जोध.) ।
140- स्रीफल-सीफल (जोध.) । कुवरि-कुमरि (जोध.) । कन्है ऐन-मु कन्है ये (जोध.) ।

शंखिनी कौ उदाहरण

झहर झहर होति पाँसुरी सरीर ऊँचौ

कढ़ी ग्रीउ ढोहे बड़े परगट देखिए ।

लामै हाथ पाइ सब टौरनि कुसूल आइ

महा दुरगंध जाकी देह में सरेखिए ।

नेंन है अलप और कुच लघु जानि परै

भाँति भाँति लटी लटी तियनि में लेखिए ।

सारस समान गति जानि लीजै निहचे कै

एते सब लछन ए संखिनी में पेखिए ॥ 141 ॥

हस्तिनी, यथा

भूरे केस जाके सब गातु अति भूरौ लसै

चौरौ है बदनु अरु नासिका है चपटी ।

कर मोटे छोटे छोटे छोटेऊ चरन मौटे

उदरु बड़ौ है तैसी उर हू में कपटी ।

ठुमकौ सरीरु जाकौ गति है बदक कैसी

जाकी दुरगंधि आवै दूरि ही तें झपटी ।

बात कहै हरें कोऊ, आपु चिचियाइ उठै

हस्थिनी की भाँति सु बतावत परगटी ॥ 142 ॥

अथ सखी–वर्णन (दोहा)

करि सिगार सिखवै तहाँ कहि रिस रस के बैन ।

हाँसी करै उराहनौ सखी काज ये ऐन ॥ 143 ॥

141- लघु जानि परै-लघु परै (जोध.) । तियनि-तिय (जोध.) । संखिनी में-संखिनी पै (जोध.) ।

142- दूरि ही-दूरि हू (जोध.) ।

143- ये-(जय.) में छूटा हुआ है ।

शिक्षा, यथा*

मेरी मानौ कही तुम सुख देउ लालन कों
लालन के सुखु दियें अति सुखु पाइहौ ।
जोई जोई कहै सोई कही करौ उनहू की
वेई कही करें तुम अधिक सिहाइहौ ।
दंपति में रस रंगु ऐसें बढ़ै 'जयसिंघ'
हौही हितू भई कहौ पिय मनभाइहौ ।
राधिका कुवरि प्यारी चतुरई बदौ तब
कान्ह कौ सुभाउ अरु आपनौ मिलाइहौ ॥ 144 ॥

राधिका की सखी

जा दिन तें बिछुरे अवधि आस राधिकाजू
भूपन बसन हू की सुध्यौ न सम्हारी है ।
घरी घरी पल छिन धाम काम आइ घेरै
जामिनी जगत जाइ भामिनी बिचारी है ।
मन में मनोरथ मनोज के सरोजमुखी
'जयसिंघ' निरखि बिसारी पीर सारी है ।
अनमिलै भूलौ नही मिलत हीं भूलि जाउ
ऐसी अदभुत गति मोहन तिहारी है । 145 ॥

[परिहास] (दोहा) ×

दंपति मोद कलोल तें हँसी करै चित चाउ ।
देखै जबहीं परसपर सो परिहासु बताउ ॥ 146 ॥

सखी कौ परिहास नायिका सों

रँगमगे नेंन और बैन कहौ अरसात
अंजनु ढरकि रह्यौ पीक पल पै लगी ।

---

* (जोध.) में केवल 'सिक्षा' लिखा है, (जय.) में केवल 'यथा' लिखा है ।

144- कुवरि-कुमरि (जोध.) । चतुरई-चतुराई (जोध.) । आपनौ-अपनौ (जोध.) ।

145- अनमिलै-अनमिलौ (जोध.) ।

× 'परिहास' शीर्षक हमने दिया है । (जोध.) में 'दोहा' के स्थान पर 'यथा' है ।

अधर रदनु सो सधर सौं गयौ है लगि.

काहे लगवायौ ऐसी अति प्रेम में पगी ।

'जयसिंघ' रस मै मगन होति इहि भाँति

मोहनु जगाए अरु आपु संग हीं जगी ।

कंचुकी दरकि रही बलया करकि गई

डगनि धरति डगै परति डगमगी ॥ 147 ॥

नायक कौ परिहास नायिका सों

लाल महावरु पौचहि लाइ लगै ककना सम सोहतु नीकौ ।

केसरि रंगु स बागौ बनाइ जनाइ कै व्याह सौ नेंननि ती कौ ।

राधिकाजू अनख्याइ गई 'जयसिंघ' जनाइ कै आननु फीकौ ।

कान्ह दिखाइ हसै कर कौ रँगु नारि लज्याइ तज्यौ भ्रमु जी कौ ॥ 148 ॥

नायिका कौ परिहास नायक सों

स्यामाजू सखीनि लै विचारि एक हाँसी ठई

कही तुम कान्ह कौ लिवाइ आवो अबहीं ।

बसन की पूतरी समान करि आपनी सु

सेज पारि राखी पटु ढाप्यौ तन सबहीं ।

आली नें कही कै छिपि रहौ तुम पीउ आए

लाल बैठि पलिका सु अंक भरी जबहीं ।

'जयसिंघ' राधिका कहकहाइ हँसि उठी

मौहनु सकुचि हँसि चोंकि उठे तबहीं ॥ 149 ॥

इति श्री राजा जयसिंघ बिरचिते काव्यरसे दसनाइका गर्वितादि सखी परिहासु बर्ननं नाम चतुर्थोध्यायः ॥ 4 ॥

147- है-(जोध.) में छूटा है । कंचुकी-कंचुकीर (जोध.) ।

148- पौचहि-पोंचिहि (जोध.) । दिखाइ-दिखीइ (जय.) ।

149-की-(जोध.) में छूटा हुआ है । कै-कि (जोध.) । बैठि-आइ (जोध.) । अंक-अंग (जोध.) ।

अथ दूती भेद–वर्णन (दोहा)

तीन तरह दूती कही तिन के लक्षन जानि ।
लाल पक्ष कै बाल की तिन कौ हालहि मानि ॥ 150 ॥

उत्तम दूती कौ लक्षण (दोहा)

लै समवो बातै करै धूत कला सब ऐन ।
उत्तम दूती सो कही करै महा रस बैन ॥ 151 ॥

उत्तम दूती कौ उदाहरण

गाजत घोर घटा चहुँ वोर सु मोरनि सोरु कै जोरु जनायौ ।
दामिनि कौंधति मेहु महा बरसै सरसै नहि जातु गनायौ ।
मानि कही 'जयसिंघ' अवै चलि बाल अयानु यों कौनु बनायौ ।
कान्ह के संग बचाउ सही नत काम कमान लै बानु तनायौ ॥ 152 ॥

यथा

सौतिनि कौ रसु रंगु लखै तन पीर अनंग ही की उमगैगी ।
सीरी बयारि बसंत वहै तहाँ रोसु रिसै जु सवै बिसरैगी ।
कूजत कोकिल कौ 'जयसिंघ' सु मोहन के सँग कौ उमहैगी ।
आजु न मानति मेरी कही दिन चारिक माँझ तुहीं तरसैगी ॥ 153 ॥

मध्यम दूती कौ लक्षण (दोहा)

बातै थोरी कहि करै प्रीति रीति रुचि काज ।
तासों मध्यम दूतिका कहत सबै कबिराज ॥ 154 ॥

मध्यम दूती कौ उदाहरण

यों जिय दूती बिचारि गई कि हौ बाग बसंत के याहि बताऊँ ।
भौरनि की धुनि बोलति कोकिल कंज कली अरु फूली लताऊँ ।
आमन मौर भए सब ठौर सु हौ हित की 'जयसिंघ' जताऊँ ।
काम के पानि कमान अमान है नेकु जताइ कै प्रीति रताऊँ ॥ 155 ॥

150-लक्षन-लछन (सर्वत्र) । पक्ष-पछ (जय.), पछि (जोध.) ।

तीसरी दूती कौ लक्षण (दोहा)

कही बात सोई कहै अधिक न कहै बनाइ ।
सोई दूती तीसरी जाके है ए भाइ ॥ 156 ॥

तीसरी दूती कौ उदाहरण

तुम्है मेरी बात कौ भरोसौ रहै भाँति भाँति
जोई कहै कान्ह सोई कहति हौ आनि कै ।
देखि कै सरद चंदु निर्मल जुन्हाई तहाँ
प्रीति कै बुलाई सुनि लेहु साँची मानि कै ।
जैसियै मनोरथ तिहारे आवै सोई करौ
'जयसिंघ' याही तें जनाई हितू जानि कै ।
चली ग्रह आपनै हौ दोसु जनि देउ फिरि
और नारि अंग संग रहै रसु ठानि कै ॥ 157 ॥

नायक के पक्ष की दूती

आवति है रिस भावति है पै अनंग के बान अगै न सकैगी ।
मेरौ कह्यौ नही मानति बाल सु कान्ह बुलाई तहाँ न चलैगी ।
देखि जुन्हाई तहाँ 'जयसिंघ' सु नारिनि औरनि प्रीति पगैगी ।
जानै नहीं रस की बतियाँ रतियाँ छतियाँ रस कों उमहैगी ॥ 158 ॥

नायक के षोडशश्रृंगार-वर्णन (दोहा)

नाइक के सिंगार जे पोडस ग्रंथनि आइ ।
सुनै रीति जिहि बिधि कहे तिहि बिधि दए बताइ ॥ 159 ॥

यथा

प्रथम सवाँरु करि मुनि करि मंजनु कौ
बसन बनाइ सीस कलगी सवाँरि कै ।
तिलकु दै भाल हाल केसरि लगाइ अंग
कुंडल पहिरि दस आँगुरे सुधारि कै ।

157-जनि-जिनि (जोध.) । रहै-रैहै (जोध.) ।
159-नाइक के-नाइ सो (जोध.) ।

कराचोली करज 'रु कंमरु कटारी कटि
कंठी कंठ सोहति है बीरा मुख धारि कै ।
पौची बनी पनहीं चतुरताई 'जयसिंघ'
कान्ह पर रीझौ प्यारी परम निहारि कै ॥ 160 ॥

नायिका*के पक्ष की दूती

गरब गहीली अति लाडिली है प्यारी महा
सुंदर बदन पर ससि डारौ वारि कै ।
नेंनऊ अमल जिन कमल मलिन किए
अदभुत रचे बिधि पैम रस ढारि कै ।
गज गैन ऐन और मैन चैन बैन कहै
कान्ह चलि देखिए या कहौ हौ बिचारि कै ।
सुंदरि न ऐसी 'जयसिंघ' कहूँ दूसरी है
मो पै सुखु पैहौ वाकी छविहि निहारि कै ॥ 161 ॥

नायिका× के षोडशश्रृंगार-वर्णन (दोहा)

पोडस कहत सिँगार जे तिन कौ निजु कै जान ।
तेही बिधि बरनें इहाँ जैसें ग्रंथ प्रमान ॥ 162 ॥

यथा

मंजनु कै अंजनु दै माग टीका पट सारी
श्रवन तर्यौना नासा बेसरि विचारि कै ।
बारनि गुहाइ उर हार छुद्र घंटिका है
कंकन बनाइ कर महदी सवारि कै ।
जावकु दिवाइ पाइ नूपुर कौ झनकाइ
पानहि रचाइ लाइ अतरु निहारि कै ।
चतुराई 'जयसिंघ' जोबन निकाई पर
पोडस सिंगार कान्ह करे है सुधारि कै ॥ 163 ॥

160-भाल-माल (जय.) । करज 'रु-करजर (जोध.), (जय.) में 'करज' लिखने के वाद एक अक्षर अस्पष्ट है ।

* (जोध.) में 'नायिका' के स्थान पर 'नाइक' लिखा है ।

161-ससि-सि (जोध.) ।

× (जोध.) में 'नायिका' के स्थान पर 'नाइक' है ।

162-प्रमान-प्रवानि (जोध.) ।

163-टीका-टीक (जोध.) ।

नायिका * के द्वादश आभरण–वर्णन (दोहा)

जे अभरन द्वादस कहे तिन के जानौ भाइ ।
ग्रन्थ रीति इहि बिधि बरनि समुझौ अति चितु लाइ ।। 164 ।।

यथा

चिहुर औ' पुतरी उरजिलघु स्यामताई
तारेऊ दसन नख उज्जल है अति हीं ।
अधर करनि अरु चरन अरुनताई
देखी मै बिचारि नीकै सुंदरि सुमति हीं ।
पीन कुच नासा कीर निपट ही छीन कटि
लटकंति चलति लगति गज गति हीं ।
आभरन द्वादस बनाए बिधि तुम काज
'जयसिंघ' तातें कान्ह हूजौ निज रति हीं ।। 165 ।।

दोनों पक्ष की दूती कौ संवाद (दोहा)

दूती नाइक पक्ष की समुझावै रस बैन ।
बाल पक्ष की दूतिका ऊतरु देइ जु ऐन ।। 166 ।।

उदाहरण

लालन लगनि तें पठावत है बेर बेर
तातें हौहूँ आऊँ तूँ न समुझावै उनहीं ।
वैसे बहु नाइक के प्यारे तें करमु जागै
तासों नही अनुरागै वातऊ न सुनहीं ।
हमही सों कहती हौ काहू सौ न कहौ कछू
लैन चलै याकौ मनु समुझत जु नहीं ।
'जयसिंघ' मोहन सु करि राखे उर माल
हाल बाल प्रीति तब जानै रस गुनहीं ।। 167 ।।

---

*- (जोध.) में 'नायिका' के स्थान पर 'नाइक' लिखा है ।

164- अभरन-आभरन (जोध.) । इहि-तिहि (जोध.) ।

165- औ'-और (जोध.) । तारेऊ दसन नख-(जोध.) में छूटा हुआ है । उज्जल-सज्जल (जोध.) । नीकै-नी (जोध.) । निज-नज (जोध.) ।

166- नाइक पक्ष-नाइक पछ (जय.), नाइक पाछ (जोध.) । वाल पक्ष-वाल पछि (जय.), बाल पछ (जोध.) ।

167- जागै-जानै (जोध.) ।

अन्यसंभोगद:खिता

पीतम लैन गई कहि कै कहि काहे तें हाँफति काँपति आई ।

टीका मिट्यौ बिथुरी पटियाँ तहाँ पीक की रेख कपोल दिखाई ।

कंचुकी है दरकी 'जयसिंघ' रु फीकी परी अधरौ की ललाई ।

मोहन काजु कर्‌यौ अपनौ अरु तूँ ही करी अपनी मनभाई ॥ 168 ॥

अनुराग–लक्षण (दोहा)

रूप लखै कै श्रवन सुनि लगनि मगन ह्वै जाइ ।

द्वै विधि कौ अनुराग है सो ऐसें अधिकाइ ॥ 169 ॥

द्रष्टानुराग

नेंननि हौ देखे आली जब तें छबीले कान्ह

चकी सी रहति कछू सुधि नाही हिय में ।

रीझ रस बस भई मोसों पैं न जानी गई

जीउ बसै उनमें कि वेऊ बसै जिय में ।

कल परै तौ लौं जौं लौं पेखौ कै धरति ध्यानु

मोहि लई मोहि महा टोहि सब तिय में ।

साँवरौ बदनु काह्वै ऐसौ नीकौ लागतु है

जैसौ मनु लग्यौ 'जयसिंघ' मेरौ पिय में ॥ 170 ॥

श्रुतानुराग

पानी लैन गई जाइ सहज में ठाढ़ी भई

आनँद की मई उहाँ धुनि सुनी ताँसुरी ।

मति मोहि लई जहाँ मोहनी मनोज छई

गाघरि के धोखें सुत ग्रीउ गुन गाँसुरी ।

168- टीका-टीकौ (जोध.) । मिट्यौ-मिलौ (जोध.) । पटियाँ-कटिया (जोध.) । रेख-(जोध.) में छूटा है ।

169- लखै-लखौ (जोध.) । द्वै-द्वौ (जोध.) ।

170- रीझ-रीझि (जोध.) । जीउ.-जीउ बसै उनमै कि वेउ बसै उनमै कि वेउ बसै जिय मै (जोध.) ।

उठ्यौ ऊ पुकारि तब दौर गह्यौ और नारि

कूप जनि डारै कैसी भूली सुधि जासुरी ।

ऐसी जक ठई 'जयसिंघ' सो जनाइ दई

कानन में कानन सुनाई कान्ह बाँसुरी ॥ 171 ॥

यथा

छाड़ि सुत गोद और पति कौ बिसारि मोद

सारी न सम्हारी प्यारी चित की हरनि मै ।

ऐसी धुनि सुनी जातें मोहत है महामुनी

मुरली है सुरली सु बाजत परनि मै ।

जंगम हौ थिर थिर चर करै 'जयसिंघ'

को न बस भयौ सुर नागनि नरनि मै ।

सब तजी सरमै है बिधी मैन सर मै है

करमै अधरमै अधरमै करनि मै ॥ 172 ॥

अथ दर्शन–लक्षण (दोहा)

चित्र स्वप्र परतछि कै दीन्हौ भेदु बताइ ।

ए तीन्यौ दरसन कहे तिनके जानौ भाइ ॥ 173 ॥

चित्र–दर्शन कौ उदाहरण

ग्वालिनि एक लै मूरति चित्र की राधिका सों कही नीके कै हेरौ ।

वाही सों मागि लै आपनै हाथ कै धाम हीं धाम करै तहाँ फेरौ ।

'जयसिंघ' दिखावै लै सूरति कौ सु बतावो मुहे उहु रूप उजेरौ ।

क्योंहूँ परै कल नेंकु नहीं सु लियौ ठगि मोहन नें मनु मेरौ ॥ 174 ॥

स्वप्र–दर्शन, यथा

आनि दिखाए अली मुहे चित्र में नेंकु सुहाइ नही सखियों में ।

भोजन भूपन पान न भावत ठाढ़ी रहौ सु लगी झखियों में ।

काजरु स्याम कौ रूपु भयौ 'जयसिंघ' बनाइ लग्यौ चखियों में ।

सोवत हीं पल लागे जबै तव कान्ह कौ ठाढ़े लखौ अखियों में ॥ 175 ॥

171- कूप-कूपा (जय.) ।

173- स्वप्र-सुप्र (जय.) । कै-यौ (जोध.) ।

174-दिखावै लै सूरति-दिखावै सूरति (जय.) ।

साक्षात्–दर्शन

मूरति छबीली सोहै साँवरी सलौनी अति
पेखबौई कीजै यह हीय में बिचारिए।
सूरति मनोहर है मौहनी रगीली महा
धीर धरै कौन जवै नैसुकु निहारिए।
'जयसिंघ' मोहन अनूप रूप निरखत
मोहै मुसक्यानि चितु वस करि डारिए।
देखत दरस दूरि दुरित तुरित होत
मुकट की लटक पै तनु मनु वारिए ॥ 176 ॥

अथ मान–लक्षण (दोहा)

मान बरनि सुकियानि कौ इनकौ सोहतु आइ।
परकीया सामान्या तिन कौ गन्यौ न जाइ ॥ 177 ॥

नायिका कौ लघु मान (दोहा)

नागरि के रसरंग मै लालु निहारें और।
उपजतु है लघु मानु तहँ सहज मिटै तिहि टौर ॥ 178 ॥

यथा

चोपरि खेलत कान्हु तहाँ सब बालनि साथ महा रस भीनै।
चाहि नवेली तहाँ 'जयसिंघ' सु लाल निहारन कों द्रग दीनै।
राधिकाजू अनख्याइ गई पुनि छक्कनि गोट धरी रस भीनै।
सारि सों मारि लयौ जुगु पीउ सु जीउ तें मानु तज्यौ हँसि ती नै ॥ 179 ॥

नायिका कौ मध्यम मान–लक्षण (दोहा)

नागरि और सराहि कै लाल कहै तहँ बैन।
उपजतु मध्यम मानु तव जतननि छूटै ऐन ॥ 180 ॥

यथा

पीउ पिया इक सेज हीं वैठि कै काम कला की कलोल करै।
स्यामा की कान्ह निकाई जनाई सु वाल रही चित रोसु धरै।
केलि में टूटे हते मुकता जह प्यारे सुधारि कै पोही लरै।
मानु तज्यौ 'जयसिंघ' तहाँ मुसक्याइ कै लाल कै लागी गरै ॥ 181 ॥

नायिका कौ गुरु मान–लक्षण (दोहा)

और तिया के चिन्ह लखि उपजतु है गुरु मानु ।
पाइ परै जबहीं पिया छूटै तवै निदानु ॥ 182 ॥

यथा

देखत नेंन ललाई जनाई सु बैननि में गति और भई है ।
बंदनु गात लग्यौ तहँ लाल कै पेखत हीं उहि पीठि दई है ।
पीतम पाइ परे 'जयसिंघ' तिया तबहीं मुसक्याइ गई है ।
रीति करौ नित हीं यह कान्ह सु कौनु सयान की टेंउ टई है ॥ 183 ॥

नायिका कौ स्वप्न मान (दोहा)

सुखु निरखै जहँ और कौ सपनें में जो बाल ।
स्वप्न मानु जागै मिटै ग्रीउ लगावै लाल ॥ 184 ॥

यथा

दंपति परसपर ऐन मैन बैन कहि
सेज पर सोए महा रूप जगिमगि कै ।
सौति की सुरति उर बाल कै रही है लाल
सपनें में देखे रहें वाके रस पगि कै ।
चोंकि कै तमकि पै मुरकि कर पाटी गही
साँचु जानि मानु करि पीठि दई जगि कै ।
'जयसिंघ' मोहन सुरति सुधि द्वावत हीं
तवही लजाइ प्यारी ग्रीउ रही लगि कै ॥ 185 ॥

नायक कौ लघु मान (दोहा)

लाल कहै सो ना करै जिय में करै गुमानु ।
नाइक के मन में तहाँ उपजतु है लघु मानु ॥ 186 ॥

यथा

लाज गई न बढ्यौ अति स्यानु न खेल्यौ हस्यौ उह सोंहें चितै कै ।
आई अबै रसु कैसें करें जु अनंग के रंग न जानें हितै कै ।
लीजै सुधारि सबै विधि मोहन सीलु सिखाइ कै प्रेम हितै कै ।
बाल सों बोलौ अबै हसि कै 'जयसिंघ' सु नेंननि नेहु नितै कै ॥ 187 ॥

187– खेल्यौ–लेपौ (जोध.) ।

नायक कौ मध्यम मान (दोहा)

पीउ मनावै नेहु कै जब नहि मानै नारि ।

उपजतु मध्यम मानु तहँ नाइक कै निरधारि ॥ 188 ॥

यथा

लालन तौ कब के निहोरत अरति कियें

तूँ तौ ह्वै सतर पीठि दई रही बैठि कै ।

पीउ केती कही अरु मैहूँ समुझाइ रही

रस में बिरसु कियौ बातनि उमैठि कै ।

कान्ह अनमनें ह्वै कैं बैठि रहे 'जयसिंघ'

प्रीति भंगु करत है तहाँ अति टेंठि कै ।

पिय कों मनाइ रसु क्यों न उपजायौ तव

अब सुखु पायौ जब गई भौहें ऐंठि कै ॥ 189 ॥

नायक कौ गुरु मान (दोहा)

लाज सकोचहि छोड़ि कै पिय सों कहै जु बैन ।

उपजतु है गुरु मानु तहँ लालन के उर ऐन ॥ 190 ॥

यथा

जोई आवै मुह सोई कहती हौ मोहन सों

भीर भार वीच तहाँ छोड़ि कै सकोच कों ।

अनबोलौ करें उन्है बीति गए कैऊ जाम

पीतम सों तहाँ तूँ न बोलै करि सोच कों ।

ऐसी कहाँ कीजियतु निपट अयान तिय

जैसें तूँ खिझाए 'जयसिंघ' दुख मोच कों ।

कानि रसु आपनौ न राखि जान्यौ मेरी आली

मेरी जानि चाहति ती सौतिनि के रोच कों ॥ 191 ॥

191-छोड़ि-छाडि (जोध.) ।

उराहनै कौ उदाहरण

जोबन निकाई रूप छबि सरसाई भाई
अति हीं सुहाई रति गति वारियतु है ।
लीन्है चतुराई सुख रस बरसाई सति
लगन लगाई गज गैन धारियतु है ।
'जयसिंघ' तोहि देखि रीझ रहे मोहन जु
मिलै किनि बेगि कहा बीचु पारियतु है ।
सखिनि में दुरि मुरि ताकि आई हेरि फेरि
नेंन ऐन मैन बान पैनें मारियतु है ॥ 192 ॥

और उदाहरण

लालन हमारे काजै ऐसी करि ढोरी लाई
रैनु दिनु कल नाहीं टौना बरसाती है ।
अतिहीं दुलारी प्यारी स्यामा कुल आपनै ही
कहा भयौ जौ पै रूप छबि सरसाती है ।
घर न रहत घरी ठाढ़े बृषभान खोरि
काम रौरि पारि अब कैसौ अरसाती है ।
मिलै किनि बेगि चलिं 'जयसिंघ' बैठी कहा
सबै ब्रज नारिनि मै एऊ करसाती है ॥ 193 ॥

अथ शिक्षा

मेरी मानौ कही तुम सुखु देउ लालन कौ
लालन के सुख दियें अति सुखु पाइहौ ।
जोई जोई कहै सोई कही करौ उनही की
वेई कही करै तुम अधिक सिहाइहौ ।

192-रस-स (जोध.) ।
193-ढोरी-ढोली (जोध.) । बरसाती है-बरसातो हौ (जय.) । सरसाती है-सरसातो हौ (जय.) । अरसाती है-अरसातौ हौ (जय.) । चलि-चाल (जय.) । बैठी-(जय.) में छूटा है । नारिनि-नारनि (जय.) । करसाती है-करसातो हौ (जय.) ।

दंपति में रस रंग ऐसे बढ़े 'जयसिंघ'

हौही हितू भई कहौ पिय मनभाइहौ ।

राधिका कुवरि प्यारी चतुरई बदौ तब

कान्ह कौ सुभाउ अरु आपनौ मिलाइहौ ॥ 194 ॥

यथा

रूप अनूप घनी बनिता तिन देखत प्रीति सुहागु जनाव़ो ।

लीन्है सुभाउ चलौ पिय कौ हियरा बस कै रस सों अपन्यावो ।

कान्ह बढ़ावत कानि घनी 'जयसिंघ' तहाँ अति कै सुखु पावो ।

सौतें रहै मुखु चाहि तबै तुम आनि कै लाल कों पान खवावो ॥ 195 ॥

प्रोषित नायक (दोहा)

प्यारी के न्यारे भयें बिरह तपनि तन होइ ।

उद्दीपन भावै नही प्रोपित कहिए सोइ ॥ 196 ॥

प्रोषित नायक कौ उदाहरण

जौन्ह लगै ज्वाल सी मृनाल ब्याल समसरि

पिक बैन सुनि स्याम श्रवन तपत है ।

भूपन बसन पान रुचत न कछूआन

अनंग के आगम तें अंगनि कपत है ।

उन बिनु कछू न सुहाइ तहाँ 'जयसिंघ'

सुंदर ता राधिका के सुख कौ जपत है ।

चंदनु चमेली चारु चौसरु न चित चाउ

चंदु चितएँ तें चछु चौगुनें चपत है ॥ 197 ॥

इति श्री राजा जयसिंघ बिरचिते काव्यरसे दूत्यादि अनुरागु दरसन नाइक नाइका के मान उराहनै सिक्षा प्रोषित नाइक बर्ननं नाम पंचमोध्याय: ॥ 5 ॥

194-दियें-दयौ (जोध.) । कुवरि-कुमरि (जोध.) ।

195-तिन-तनि (जय.) । घनी-(जोध.) में छूटा है । सौतें-सौतौ (जोध.) ।

(दोहा)

रीति बरनि कही नाइका जैसे तहाँ बिचार ।

अलंकार तिन के कहौ जे कबिता निरधार ॥ 198 ॥

भाव कौ लक्षण (दोहा)

बात सुनत कै लखत हीं कछू चित्तु लगि जाइ ।

भाउ कहै तासों तबै ग्रंथनि कौ मतु पाइ ॥ 199 ॥

यथा

खेलत साथ सहेलिनि के अति नीकौ सुभाउ तबै लौ हतौ ।

बोलति डोलति ती तब लौ जब लौ कहूँ लाल कौ सोधु न तौ ।

घरघालनु कान्हु कढचौ कित हूँ जिह में नहि देखिए पीत पतौ ।

'जयसिंघ' लखे इनने उनकों तब तें भयौ और कौ और मतौ ॥ 200 ॥

यथा

चितु रहै चकित सुहातु नेंकहू न मन

रहै मुरझाइ सिसुताई के गवन में ।

आली बहराइ कै उपाइ करै केते आइ

कछू न सुहाइ वाकों नेकहूँ भवन में ।

कर मीड़े पछिताइ कहा भई कैसी आइ

कहै सब धाइ देखि बिरह तवन में ।

कोऊ कहौ समुझाइ डरवाइ तही जाइ

चेटकु सौ गयौ करि कान्हु चितवन में ॥ 201 ॥

हाव कौ लक्षण (दोहा)

प्रगट जनावै चेष्टा भाउ भए पर आनि ।

कविताई मतु पाइ कै तिह कौ हाउ बखानि ॥ 202 ॥

200-के-मै (जोध.) । पतौ-मतौ (जोध.) ।
201-चितवन-चितवनि (सर्वत्र) ।

हाव कौ उदाहरण

आवतु अंग अनंग तें स्वेद छिपावत मै उघरै रति हीं ।
खेलै न बोलै सहेलिनि सों तहँ होति अकेली हरी मति हीं ।
सारी सम्हार नहीं सुधि भूपन सोचु बढ्यौ सु कहा गति हीं ।
कान्हु निहारे कहूँ 'जयसिंघ' जनावति है तब तें अति हीं ॥ 203 ॥

यथा

रूप अनूप दियौ बिधि तोहि सु मोहि जनावतु है ससि फीकौ ।
खंजन कंज सु गंजन नेंन है अंजन दैन ठगै मनु पी कौ ।
मोहन लाल कों राधिका बाल भई 'जयसिंघ' हरा उर ही कौ ।
देखत हीं छबि रीझ भए बस जोवन सोवन तो बन नीकौ ॥ 204 ॥

हेला कौ लक्षण (दोहा)

बैन जनावैं नेंन अरु प्रगट लगनि हो जाइ ।
तासों हेला कहत है पोथिनि कौ मतु पाइ ॥ 205 ॥

हेला कौ उदाहरण

काहू सों न बोलति है डोलति है घाट बाट
खोयौ कहा गयौ जाकों ढूढति फिरति है ।
मोहू सों तूँ कहि बात हम चलै तेरे साथ
टोहि लीजै जिय माँझ जाही की अरति है ।
मोहन सों कहूँ जनि भूलि कै लगावो मनु
उहू निरमोही काजै सुधै बिसरति है ।
'जयसिंघ' वाके मन आवतु न औरु कछू
वाही केरी चाह रट वाही की धरति है ॥ 206 ॥

लीला कौ लक्षण (दोहा)

प्रेम उमग अति बाम जहँ करै नाह कौ भेपु ।
लक्षनु ताकौ कहतु हौ लीला ताकौ लेखु ॥ 207 ॥

यथा

लालन के बसन पहिरि सब अंग लए
उनही के आभूपन पहिरे बनाइ कैं ।

204-सोबन-(जोध.) में दो बार लिखा है ।
205-हो जाइ-सो होइ (जोध.) ।
206-जिय-हि (जय.) । लगावो-लगायों (जोध.) । सुधै-सुध्यौ (जोध.) ।

सीस पै मुकटु धरि मुरली बजावै तहाँ

'जयसिंघ' उठति है ऊसी भाँति गाइ कै ।

मुसक्याइ ऊसिही सखी कौ भरि अंक लेइ

ऊसिही चलति करि ऊसेई सुभाइ कै ।

मोहन कौ रूपु कियें राधिका फिरति ऐसें

दुरि दुरि सवै अवै देखौ धाइ आइ कै ॥ 208 ॥

विलास कौ लक्षण (दोहा)

औचक मै कछु लाल सों निरखनि में मुसक्यानि ।

हरपु बढ़ै उर अति तहाँ सो विलास कौ जानि ॥ 209 ॥

विलास कौ उदाहरण

मोहन राधिका भेंटन कों बृपभान के धाम गए मिसु लीन्हौ ।

साथ सखा इत नारी घनी उत दाउ बनै न महा हटु कीन्हौ ।

चोंप लएँ अति लाल तहाँ 'जयसिंघ' उपाइ यहै चित चीन्हौ ।

सैंनि मिलाई है बैननि की चख चारि भयें तें दुहूँ हँसि दीन्हौ ॥ 210 ॥

विच्छित्ति* कौ लक्षण (दोहा)

भूपन बसननि साजि कै सुंदर करै बनाउ ।

सो बिच्छित्ति कहावई तिह कौ जानौ भाउ ॥ 211 ॥

विच्छित्ति× कौ उदाहरण

कंचन के आभूपनइ हाँतें करे राधिका

रतनमै आभूपन पहिरे है तन में ।

सारी लै सुधारी जरी खरी लरी फूदा करि

रुचि कै बनाउ सज्यौ आयौ जैसौ मन में ।

नगनि डगनि होतु जगर मगर अति

दीपति दिपति सोहै नारिनि के गन में ।

'जयसिंघ' अदभुत छवि देखि मोहि रहे

उमग बढ़ावै नेंन रीझै ऐसी धन में ॥ 212 ॥

208- (जोध.) में प्रथम चरण के अंत का 'कै' छूटा हुआ है ।

209- मुसक्यानि-मुसिक्याइ (जोध.) ।

210- यहै-है (जोध.) ।

*- दोनों हस्तलेखों में 'बिचित्र' है ।

211- भूपन-भूपननि (जय.) । सुंदर-सुंदरि (जोध.) । बिच्छित्ति-बिचित्र (सर्वत्र) ।

×- दोनों प्रतियों में 'विच्छित्ति' के स्थान पर ' विचित्र' है ।

212- रतनमै-रतनमय (सर्वत्र) । दिपति (जोध.) में छूटा हुआ है ।

विव्वोक कौ लक्षण (दोहा)

लाल सुधारत आभरन बाल तहाँ सतराइ ।
सो बिब्वोक कहावई ताकौं देउ बताइ ॥ 213 ॥

विव्वोक कौ उदाहरण

मोहन मोहि तहाँ 'जयसिंघ' तिया के सिगारन के रस पागे ।
भूपन साजि दिए सब अंग अनंग के रंग महा अनुरागे ।
फूल मगाइ कै बैनी गुहै धनभाग सुहाग जनावत जागे ।
बाल कहै अनखाइ बनाउ बनाइ न आवै बनावन लागे ॥ 214 ॥

किलकिंचित कौ लक्षण (दोहा)

विहसनि आसू खुनस जहँ होइ एक ही बार ।
सो किलकिंचित कहत है कहौ तहाँ निरधार ॥ 215 ॥

किलकिंचित कौ उदाहरण

लालन बाल की माल सुधारत हाथ सों हाथ छुड़ाइ सु डारै ।
छोरत ही बँद कंचुकी के सतराइ महा असुवा उर ढारैं ।
मोहन मोहन कों 'जयसिंघ' सु घात करै मन बात बिचारैं ।
जावकु पाँउ छिवावत हीं हसि नेंननि नेंननि नेकु निहारै ॥ 216 ॥

मोट्टायित कौ लक्षण (दोहा)

पिय निरखै आलस सहित अंग मोरि जम्हुवाइ ।
तासों मोट्टाइत कहत जबै होइ यह भाइ ॥ 217 ॥

मोट्टायित कौ उदाहरण

बागै औ' बीरा बनै मनमोहन देखत ही छबि मोहै सबै ।
रूपु लखै तह लाजै मनोज सु रीझि रही तकि बाल तबै ।
कान्ह निहारि कै राधिका अंग अनंग के रंग बढ़े है जबै ।
यों 'जयसिंघ' कछू अगर्याइ जम्हाइ जनावति चोंप अवै ॥ 218 ॥

कुट्टमित कौ लक्षण

अधरपान क़े करत हीं वाल झुकै अनखाइ ।
ताहि कुट्टमित कहत हैं बर्ननु दियौ जनाइ ॥ 219 ॥

216- छुड़ाइ-छुटाइ (जोध.) । कों (जोध.) में छूटा है । छिवावत-छिपावत (जोध.) ।
218- ही (जोध.) में छूटा है ।
219- कुट्टमित-कुटमित (सवंत्र) । बर्ननु-बरनंन (जोध.) ।

कुट्टमित कौ उदाहरण

आवत बाल गली में मिली सु अली चलि कै यह घात दई ।
धाइ कै कान्ह धरी कर बाँह बसाइ नही बस आनि भई ।
अंक लई 'जयसिंघ' तहाँ सतराइ रिसाइ कै ग्रीउ नई ।
कान्ह दिए अधरौ रदनक्षत बाम कही यह ट्यों न गई ॥ 220 ॥

विभ्रम कौ लक्षण (दोहा)

लाल निरखि मन हरपि कै भूलि करै कछु बाल ।
बिभ्रम तासों कहत है ताहि बताऊँ हाल ॥ 221 ॥

विभ्रम कौ उदाहरण

बाल बनावत भूपन अंग सु कान्ह कौ आवनु काहू कह्यौ है ।
चोंकि परी तहँ भूलि उताइल बंदनु अंजनु ठौरु गह्यौ है ।
नूपुर साजि लए कर आँगुरी ग्यानु उताइल में न रह्यौ है ।
देखि कै पीउ हसे 'जयसिंघ' भलौ अलबेलौ बनाउ लह्यौ है ॥ 222 ॥

यथा

मंजनु कै सुंदरि सवाँरि रुचि पाटी पारि
आभूपन पहिरे सुधारि सब तन में ।
सखी ही सों सतराइ कही कजरौटी ल्याउ
करति है सोई जोई आवति है मन में ।
भूपन धरै उतारि कबहूँ पंहिरि लेइ
ऐसी टक लई सोई देखियतु धन में ।
मोहन की प्रकृति सु जानी गई 'जयसिंघ'
भावति है उहै अति तिय अनगन में ॥ 223 ॥

ललित कौ लक्षण (दोहा)

सुंदर अरु सुकुमारता जानहु फूल समान ।
इतने गुन जब बरनियें सो है ललित प्रमान ॥ 224 ॥

222- कह्यौ-कहौ (जोध.) । (जोध.) में द्वितीय पंक्ति छूट गई है । रह्यौ-रहौ (जोध.) ।
223- प्रकृति-प्रकति (जय.) ।
224- सुंदर-सुंदरि (जोध.) । सुकुमारता-सुकुमारिका (जोध.) । जानहु-जान्हु (जय.) ।

ललित कौ उदाहरण

मोहन के मोहिबे कों बाल जैतवारि महा
काम पीर गंजन है गुननि की साधिका ।
कंचन की बेली कैधौ कली यह कंज हू की
अंजन के दियें देखौ रहति समाधिका ।
दामिनि सी दमकी है देह की सरस दुति
'जयसिंघ' लखी हाल बाल राति आधिका ।
बारन के भार ताके सम काजै करै हार
सकती नही सम्हार सुकुमारि राधिका ॥ 225 ॥

मद कौ लक्षण (दोहा)

प्यारु करै पिय कै तहाँ बालहि होइ गुमानु ।
ताही सों मद कहत है सो निहचे कै जानु ॥ 226 ॥

मद कौ उदाहरण

डोलति है अलबेली औरनि सहेलिनि में
मन मेलू एक सोई बैननि कहति है ।
कान्ह तोसों दीन भए तूँ न देखै उन तन
सुख कौ न जानै रस गति न लहति है ।
पीउ पाइ परै तूँ उठावति है पाइन कै
कर कै न छूवै सीस टकु या महति है ।
'जयसिंघ' कहा बानि भई तुहे यह आनि
ज्यों ज्यों समुझाऊँ त्यों त्यों माती सी रहति है ॥ 227 ॥

यथा

अति इतराति सतराति जाति कहौ बात
पिय हू के साथ राति तेऊ लई जानि कै ।

225- कंचन की बेली-कंचन बेली (जोध.) ।
227- औरनि-और (जोध.) । उठावति-बढ़ावत (जोध.) । तुहे-है तू (जोध.) ।

आपु पानि दैहि पान तेरै तिनका समान

रहै भौहै तानि कौन बानि गही ठानि कै ।

कान्ह की न करौ कानि यह मै लख्यौ अयानु

समुझौ नही निदान बैन कानि मानि कै ।

'जयसिंघ' महाजान तिन सों करौ गुमानु

अधिक अमान कामु हनै बान आनि कै ॥ 228 ॥

हसित कौ लक्षण (दोहा)

हसति रहै बिनहीं हसी पिय रस कौ उर चाउ ।

हसित कहै तासों सबै तिह कौ जानौ भाउ ॥ 229 ॥

हसित कौ उदाहरण

लालन सों नव नेहु भयौ रस प्रेम पगे तें छकी लौ जनावै ।

बात कहै सतराइ कै और तौ आपु हसै न कछू चित ल्यावै ।

है मुसक्यानि बढ़ी अधरौ सधरी मधुरी 'जयसिंघ' जनावै ।

केसरि सी कह खाएँ फिरै तहँ कान्ह के नेंननि नीकै सिहावै ॥ 230 ॥

चकित कौ लक्षण (दोहा)

सहज माँझ कछु चोंकि कै चकित होइ जो नारि ।

चकित कहावै तिह समें कही तहाँ निरधारि ॥ 231 ॥

चकित कौ उदाहरण

मोहन औ' राधिका रमत एक संग रंग

अंग मै अनंग हू की करै दाउ घात कौ ।

हसत कहकहाइ कबहुँक मुसक्याइ

रस की परसपर कहै तहाँ बात कौ ।

228- दैहि पान-दैह पानि (जोध.) । की न-कीन्ह (जोध.) ।

229- उर चाउ-उच्चाउ (जोध.) । हसित-हसत (सर्वत्र) ।

230- लालन-लाल (जोध.) । पगे-पग (जोध.) । आपु-आइ (जोध.) । अधरौ सधरी मधुरी-अध मैं अधरानि धुरी (जोध.) । सी कह खाएँ फिरै-की कह पोरै दीयै (जोध.) ।

231- तिह समें-तिहि सबै (जोध.) ।

चंदमुखी नागरि निकट होकै कढ़ी कोऊ

नेंननि में रही बस देखी उत जात कौ ।

पीतम चकोर कैसी टक लाई 'जयसिंघ'

चोंकि कै चकित भई भयौ भ्रमु गात कौ ॥ 232 ॥

केलि कौ लक्षण (दोहा)

प्रेम उमग पिय प्रीति सों तिया करै कछु खेल ।

केलि कहै तासों सबै दंपति के मन मेल ॥ 233 ॥

केलि कौ उदाहंरण

बाँटि लई मिरी सम पिया प्यारी तहाँ तब

मगन ह्वै पगे अति रस की उमंग में ।

फूलनि की गैद करि लई सब झोली भरि

खेलत परसपर प्रेम ही के रंग में ।

राधिका कुसम्ह लैकै घालती है मोहन पै

आली लाल बाल गहि किए एक संग में ।

'जयसिंघ' जैसें घनु दामिनि दमक दीसै

गोरे तन ऐसी छबि लसी स्याम अंग में ॥ 234 ॥

मुग्ध कौ लक्षण (दोहा)

जो अनमिलती बात कहि प्रगट जनावै आइ ।

तासों मुग्ध कहै गुनी जाकौ ऐसौ भाइ ॥ 235 ॥

मुग्ध कौ उदाहरण

अमल कमल सोहै नवल बदनु जाकौ

सुखु कौ सदनु सोई लाल मन में रहै ।

जोई जोई कहै सोई करत है 'जयसिंघ'

जब तब अब तुहीं भ्रमु जिय में गहै ।

232- (जोध.) में पूरा छन्द छूट गया है ।

234- उमंग में-उमंग है (जोध.) ।

कबहूँ मगावै चंदु जोर्यौ चाहै आनन कौ

ऐसी अटपटी टेव अति चित में लहै ।

आई तरुनाई पै प्रकृति उहै लरिकाई

कहा कहौ चूकि चूकि बैननि सबै कहै ॥ 236 ॥

विहृत* कौ लक्षण (दोहा)

बौलै लालन सों नही खुनस माँह रगि जाइ ।

तासों बिहृत कहत है सो हौ दैउ बताइ ॥ 237 ॥

विहृत× कौ उदाहरण

लालन पास है नारि घनी तहँ राधिका चोंप सों चित्तु लगायौ ।

मोहन चाहि रहे उत वोर कों बाल तहाँ जिय रोसु रगायौ ।

पीउ कही इनसों कछु बात सु चाहत है मनु प्रेमु पगायौ ।

ऊतरु देत चले असुवा 'जयसिंघ' तहाँ तिय कोपु जनायौ ॥ 238 ॥

कुतूहल कौ लक्षण (दोहा)

कौतिक कौ देखन लगै बहुत होइ चित चाउ ।

ताहि कुतूहल कहत कबि जेते संपरदाउ ॥ 239 ॥

कुतूहल कौ उदाहरण

बैठी तहाँ ढिग और सहेली सिगारु करै जहँ सुंदर अंग में ।

मोहन गाई मनोहर बानी सु चोंप बढ़ी सुनि वाही के रंग में ।

अंजनु एकही नेंन दियौ तहँ छूटी लटै गुहै मोतिनि मंग में ।

चाह लगी उठि धाई तबै 'जयसिंघ' जनाई अलीनि के संग में ॥ 240 ॥

236- करत है-कही करौ (जोध.) । लहै-गहै (जय.) । प्रकृति-प्रकति (जय.) । कहौ-भयौ (जोध.) ।

*-दोनों हस्तलिखित प्रतियों में 'विहृत' के स्थान पर 'बिक्रित' है ।

237- विहृत-बिक्रित (सर्वत्र) ।

×- दोनों हस्तलेखों में 'बिक्रित' लिखा है ।

238- जिय-जय (जोध.) । ऊतरु -उतर (जोध.) ।

240- मंग-माग (जोध.) ।

तपन कौ लक्षण (दोहा)

मैन दहन अति तन भयें जिय में होइ न रंगु ।
तपन होइ बिछुरें तहीं दोई चाहत संगु ॥ 241 ॥

तपन कौ उदाहरण

जा दिन तें बिछुरे जदुराइ जनायौ न प्रेम सुनाइ किसा कौं ।
काम के पानि में बान कमान बियोगिनि ढूढ़त चारौ दिसा कौं ।
कान्ह कौ देखौं कबै 'जयसिंघ' मनोज बढ़ावत ही में तिसा कौं ।
नाहु कौ नेहु निहारि कै नारि न आवत नीद है नेंकु निसा कौं ॥ 242 ॥

विक्षेप कौ लक्षण (दोहा)

तरह होइ लडबाउरी माते कैसी बानि ।
सो विक्षेप कहावई यह निहचे कै जानि ॥ 243 ॥

विक्षेप कौ उदाहरण

काहू सों कहति बात चितवति कहूँ जाति
कह्यौ चाहै कछू मुह आवै कछू कहि कै ।
मोहन कौ सुनै जित दौरि चलै तितही कौ
सीस खसी सारी रह्यौ काजरु सु बहि कै ।
पाइ धरै कितहू कौ परत है कितहू कौ
बरज्यौ न मानै ऐसी टक लई गहि कै ।
बिन हसी हँसति निहारी ऐसी 'जयसिंघ'
हसी कौ न डरै फिरै हँसति उमहि कै ॥ 244 ॥

विनय कौ लक्षण (दोहा)

प्रकृति लियें पिय की चलै भूलि करै नहि मान ।
विनय कहै तासों गुनी रस गति लसै निदान ॥ 245 ॥

243- विक्षेप-विछेप (सर्वत्र) ।
244- मोहन कौ सुनै-मोहन सुनै (जोध.) । टक-टेउ (जोध.) ।

विनय कौ उदाहरण

पीतम सों निज प्रीति भई सु रही बसि जी अतिहीं तहँ ती कैं ।
लागै नही पल देखे बिना कल नेक न वोट बढ़ै रस नीकैं ।
मोहन के मन में भई डोलति रूसै न क्योंहूँ भयें रिस ही कैं ।
भावतु औरु नही 'जयसिंघ' सु मानु करै न सिखाएँ सखी कैं ॥ 246 ॥

मधुरता कौ लक्षण (दोहा)

बिन सिगार मोहति मनहि नेंननि महा सुहाइ ।
ताहि कहत है मधुरता सो हम दई बताइ ॥ 247 ॥

मधुरता कौ उदाहरण

भूपन न अंग संग पट चटकीले नही
गातु दरसतु मानौ जौन्ह जगमगी है ।
सहज रहनि माँझ लागति है अति नीकी
बिनहू बनाउ करै सोभा सुभ लगी है ।
देखत ही मोहि रहै मनु जहाँ 'जयसिंघ'
अतिही सलौनी छवि मन माह खगी है ।
जैसें घन टरै चंद दीपति बदन ऐसें
चितौनि में कान्हर की चित गति ठगी है ॥ 248 ॥

धीरता कौ लक्षण (दोहा)

निदरि सबै भै मिटि गई पिय सों लागे नेंन ।
तिह सो कहिए धीरता नेह जनावै बैन ॥ 249 ॥

धीरता कौ उदाहरण

नेंन लगे मेरे पीतम सों कोऊ घैरु करै सु कहा करि लैहै ।
देखि रहौ टकु लाइ पिया तन दोसु जु दैहै भलै ही सु दैहै ।
लोक की लाज तजी कुलकानि हौ क्योंहू डरौ न कितौ कोऊ कैहै ।
मोहि लयौ मनु मोहनजू 'जयसिंघ' लुगाई कहा अनखैहै ॥ 250 ॥

246- ती कैं-ती कौ (जोध.) । देखे-देपि (जोध.) । नीकैं-नीकौ (जोध.) । क्योंहूँ-कैहू (जोध.) । रिस ही कैं-रिस ही कौ (जोध.) । सखी कैं-सखी कौ (जोध.) ।
248- न-(जोध.) में छूटा है ।
250- अनखैहै-पैहै (जोध.) ।

यथा

औरु न भावै निहारे बिना जु भयौ बस चितु फिरै नहि फेरौ ।
तौ लौ परै कल नेंननि कों सखि जौ लगि रूप बसै उन केरौ ।
घैरु लुगाई करै 'जंयसिंघ' तिन्है यह बूझौ कियौ कह तेरौ ।
कोऊ कहौ सु भलै ही कहौ पै लग्यौ मनमोहन सों मनु मेरौ ॥ 251 ॥

ढीठौ कौ लक्षण (दोहा)

हँसें, ठौरु नहि जानि कै नेंननि लाल लज्याइ ।
ढीठौ सोई बिदित है जाके ऐसे भाइ ॥ 252 ॥

ढीठौ कौ उदाहरण

खेलत कान्ह सखानि के मध्य सु नारि हँसी की चलावति वातें ।
गौने की राति की केलि कहौ जेव काम कलोल करी रति घातें ।
लालु रहे मुहु मोरि तितै मुसक्याइ कै तारि ही देति है यातें ।
कीन्ही चलावनी यों 'ज़यसिंघ' लिए धरि ग्वालनि बीच महा तें ॥ 253 ॥

शोभा कौ लक्षण (दोहा)

भूषन बिनु मनौ आभरन पहिरे अंग बनाइ ।
नेंन मते से सहज ही सोभा दई बताइ ॥ 254 ॥

शोभा कौ उदाहरण

सहज हीं भए बिन भूपन अभूपन से
मादिक बिना ही नेंन मते से रहत है ।
लागी मुसक्यानि रहै अधरनि मोहनी सी
देखत ही तेही घरी मोहि उमहत है ।
ऐसियै निकाई सब ठौर पाई 'जयसिंघ'
बस करि लीबे हू के मतहि लहत है ।
अनही सुमन तहाँ गति काम बान भई
जोबन के आयें अंग सोभा यों गहत है ॥ 255 ॥

254- मनौ-मानौ (जय.) ।
255- अभूपन-आभूपन (जोध.) । तहाँ-तह (जोध.) ।

कांति कौ लक्षण (दोहा)

कमल न सर कर की करै जोबन कर्‌यौ प्रगासु ।
कांति कहै तासों गुनी जाकी दुति आभासु ॥ 256 ॥

कांति कौ उदाहरण

चंपक औ' कंचन की तन दुति दीसति है
बैननि सुधा सों स्रवननि धारियतु है ।
करनि की छबि न कमल पावै 'जयसिंघ'
गजकुंभ कुच सम यों बिचारियतु है ।
कोटिनि कटाछनि रिझावै मनु पीतम कौ
जब उन तन फिरिकै निहारियतु है ।
खंजन के गंजन है मोहि लेत मोहन कौ
नेंन रावरे पै मैन बान वारियतु है ॥ 257 ॥

दीपति कौ लक्षण (दोहा)

काम कला पूरन लसै अंगनि यों मुसक्यानिं ।
रतन जोति लौ गात छबि दीपति की यह बानि ॥ 258 ॥

दीपति कौ उदाहरण

काम दुति पूरन लसी है जाके तन आइ
मति मोही पीतम की लखत है जबही ।
रची बिधि यह मानौ भूमि कौ है आभूषन
रीझि रहे मोहन के नेंन मनु सबही ।
पिय कौ बसीकरन मुसक्यानि भई आनि
'जयसिंघ' निहचे कै जानि परी अबही ।
रतन लौ जोति अंग किरनि जगमगाति
दीपति दिपति चकचोंधी लगै तबही ॥ 259 ॥

अथ उद्दीपन

सघन है अमराई मौरी नव दल सोभा
गुंजत है भौर दौर बैठत है मौर छोर ।

257- लेत-देत (जोध.) ।

सूरज की किरनै तड़ाग में जगमगाति

लावै चकचोंधी कंज फूलि रहे घनै भोर ।

'जयसिंघ' अदभुत फूल गुललाला हू के

पाननि की हरियाई देखियतु महा जोर ।

नागरि छबीली बनि ठनि पनघट आवै

गावत है गुनी मन मोहतु है सबै वोर ॥ 260 ॥

इति श्री राजा जयसिंघ बिरचिते काव्यरसे भाउ हाउ हेला भेद निरूपनो नाम षष्ठोध्याय : ॥ 6 ॥

अथ नव रस

श्रृंगार-वर्णन (दोहा)

स्याम बरन सिंगार कौ देव कान्ह कौ मानि ।

सो संजोग बियोग है दो बिधि कह्यौ बखानि ॥ 261 ॥

श्रृंगार का तीसरा भेद*

दो बिधि कौ सिंगार रसु बरन्यौ है सब ठौर ।

तीजौ भेदु बिचारि कै प्रगट कर्‌यौ यह और ॥ 262 ॥

ज्यों धीराधीरा यहै भेदु तीसरौ होइ ।

त्यों संजोगबियोग पुनि जानि लेउ सब कोइ ॥ 263 ॥

संयोगवियोग कौ लक्षण (दोहा)

एक नगर कैं धाम में प्रीति चाह हो कंत ।

केंहूँ मिलनु बनै नही बिरहु बढ़ै अतिवंत ॥ 264 ॥

260- भोर-भौर (सर्वत्र) । गुललाला हू-गुललाल हू (जोध.) ।

*- यहाँ से लेकर छन्द संख्या 266 तक का अंश (जोध.) में नहीं है । यह शीर्पक हमने दिया है, (जय.) में इसके स्थान पर 'संजोगबियोग कौ लछन' शीर्पक है जो हमने छन्द संख्या 264 के पूर्व स्थानान्तरित कर दिया है ।

यथा

गोनें आयें तहाँ अति भयो है नवल नेहु
भेंटन कों अकुलाइ बनतु न केंहूँ है ।
और ही सों बात कहि उनकौ सुनायौ चाहें
श्रवन में परै सु जतनु करे तेंहू है ।
गुरजन अटक मटक होति जिय माँझ
निकट न होत सुखु टकँ होति येंहूँ है ।
'जयसिंघ' यें बिधि बिरहु राधा मोहन कौ
प्रगट जनावतु संजोग के समें हू है ॥ 265 ॥

ताकी साषि

दरफुल्ल कमलकाननसौरभसंभारमंथर पवनः ।
दयितोरसि शयितामपि दयितामभितापयांचकार ॥ 266 ॥

हास्य रस कौ लक्षण (दोहा)

प्रमथ देवता सेत रँगु हाँसी थाई जानि ॥
हाँसी जिहि तें उटति है सो आलंबनु मानि ॥ 267॥

हास्य रस कौ उदाहरण

खेलें फागु राधिकाजू साथ मनमोहन कें
छूटै पिचकारी मूठि उड़ति गुलाल की ।
सुंदरु बदनु देखि रीझि रहे तिहि ठौर
घेरि कै पकरि लए भए बस बाल की ।
काजरु कंराई में जनावै नही 'जयसिंघ'
अदभुत गति अति ठई तहाँ ख्याल की ।
दुहूँ पल चंदनु लगायें ऐसी छबि भई
कौड़ी के समान आखें सोहति गुपाल की ॥ 268 ॥

266- यांचकार-यांचकं ।
267- प्रमथ-प्रथम (जोध.) ।
268- छूटै-छूटी (जोध.) ।

वीर रस कौ लक्षण (दोहा)

सक्र अधिप कंचन बरन थाई है उतसाहु ।
जिहि जीतै आलंब सों रस यों वीर निवाहु ॥ 269 ॥
सो पुनि कहियतु चारि बिधि जुद्ध धर्म अरु दान ।
दयाबीर चौथौ कहै जानौ यहै निदान ॥ 270 ॥

युद्धवीर कौ उदाहरण

पारावार पार भयें लंका के निकट गयें
आननु अरुन भयौ चमू तन हेरि कै ।
सुभटनि पान दैकै करत हुकमु यह
रापस न वचै ऐसे लेहु सव घेरि कै ।
चाँप धुनि करि कर बान लैकै उलछारि
रामचन्द्र जीति सी जनावति है टेरि कै ।
सुरनि कै तवही नगारे वजे 'जयसिंघ'
तीनौ लोक मनमान्यौ करैं सुखु फेरि कै ॥ 271 ॥

धर्मवीर कौ उदाहरण

सुचि करि प्रात ही तें दान करै बहु विधि
दुजनि कौ पूजि और भिछुक नवाजही ।
दुनी दीन दुख्ख तहाँ दूरि होत देखत ही
दिनकर उवै जैसें घोर तम भाजही ।
उपवन बावरी तड़ाग होति नित अति
जग्य के करन कौ सकल साजु साजही ।
'जयसिंघ' रामचंद्र रत परकाज माझ
सब ठौर धरम निबाहन बिराजही ॥ 272 ॥

269- जिहि-जिहैं (जय.) ।
271- निकट-निपट (जोध.) । भयौ-भयें (जय.) । धुनि करि-धुकरि (जोध.) कर बान-करबाल (जोध.) ।
272- भिछुक-कछुक (जोध.) ।

दानवीर कौ उदाहरण

दुनी माँझ गुनी काजै भूपन बसन और
नग अनगन भाँति भाँतिनि के साज है ।
साल सुखपाल माल हाल हीं मगाइ देत
कीजतु तयार वेगि घनै गज बाज है ।
दिन दिन तहाँ ऐसे दान करै रामचंद्र
'जयसिंघ' सब बिधि सुख के समाज है ।
मनचाह्यौ बगसत छिनकु न लावै बार
गरीब कौ करै धरि गरीबनवाज है ॥ 273 ॥

दयावीर कौ उदाहरण

रावन नें तीनौ लोक मद्धि दुखु दयौ घनौ
कठिन कलेस तहाँ भए ठौर सबहीं ।
ब्याकुल लखत सुर नर नाग मुनि रिपि
लियौ अवतारु दसरथजू कें तबहीं ।
परपीरहरन नवाजें सरनागतनि
काटत हैं संकट जनावै जनु जबहीं ।
असरनसरन क्रपानिधान रामचंद्र
'जयसिंघ' जाके नाउ खल दल दबहीं ॥ 274 ॥

भयानक कौ लक्षण (दोहा)

कहें देवता कालु, डरु थाई, कारौ रंगु ।
जिहि तें डरु आलंबु सो यहै भयानक संगु ॥ 275 ॥

भयानक कौ उदाहरण

रावन कौ समुझावन कौ जुरि आवत है 'जयसिंघ' सबै ।
जौपै कहावो बड़े मरदानै तौ काहे कौ सीय चुराई अबै ।
बालि कौ पूत है अंगदु साथ हनू जिहि लंक जराई तबै ।
राम के आगे धरौ नही धीर लखौ रन में उह फौज जबै ॥ 276 ॥

273- कीजतु तयार-कीजयतु यार (जोध.) ।
275- कारौ-जाकौ (जय.), ज कारौ (जोध.) । भयानक-भानकु (जय.) ।

रौद्र रस कौ लक्षण (दोहा)

रुद्र अधिप अरु अरुन रँगु सत्रु आलंवनु आइ ।
रिस थाई सो रौद्र रस कहौ ग्रंथ मतु पाइ ॥ 277 ॥

रौद्र रस कौ उदाहरण

लंका जोर खैल भैल वाजिनि कौ नाद महा
कुंभकर्न सैनु साजि गाजै आइ रन में ।
इतै सब सूर लैंकै राम कढ़ि ठाढ़े भए
मारु मच्यौ भारी तरवारनि कौ तन में ।
दुहूँ वोर बीरनि कै हाँकै अति सोरु होतु
फाटै जनि आसमानु ऐसी आवै मन में ।
'जयसिंघ' मानौ ए सु जूथनि पहार लरें
धाइ भक रुंड रहें चमू अनगन में ॥ 278 ॥

अदभुत रस कौ लक्षण (दोहा)

अचिरजु थाई पीत रँगु काम देवता जानि ।
अदभुत रसु आलंबु जो भाँति अपूरब मानि ॥ 279 ॥

अदभुत रस कौ उदाहरण

रापस कैंऊ हजार लियें खर दूपन आनि कियौ रन भेलौ ।
मुंडनि खंडि कै रुंडनि झुंड झिरै तिन श्रोनु बहै अति रेलौ ।
जीति सदा 'जयसिंघ' है राम की दुष्टनि के दल सेल्हनि पेलौ ।
लाखनि में लिखि राखी है बात सु लाखु उतै इत आपु अकेलौ ॥ 280 ॥

करुण रस कौ लक्षण (दोहा)

धूम बरन जमु देवता अस्थाई है सोकु ।
जिहि तें दुखु आलंबु सो रसु करुनहि अवलोकु ॥ 281 ॥

277- (जोध.) में छन्द छूट गया है । रौद्र-रुद्र (जय.) ।
278- धाइ-बाइ (जोध.) ।
280- कियौ-परौ (जोध.) । मुंडनि-मंडन (जोध.) । श्रोनु-पोनु (जोध.) ।

करुण रस कौ उदाहरण

दसरथ काजै परी बचन निबाहिबे की

प्रान ही तें प्यारौ सुतु तजि तन दाहियै ।

'जयसिंघ' कैकई कठोर यह कामु कियौ

भरथ कौ राजु दैन भई मति ताहियै ।

जसु छोड़ि पति छोड़ि मानि यह निहचे कै

अधम कै करुना न जानियतु जाहियैं ।

कोमल चरन कैसें धरिहै धरनि पर

राम सुकुमार कौ का एतौ दुखु चाहियै ॥ 282 ॥

शांत कौ लक्षण (दोहा)

निर्मल रँगु हरि देवता थाई सम ता होइ ।

जगु अनरुचि आलंबु है सांत सु कहिए सोइ ॥ 283 ॥

शांत कौ उदाहरण

इंद्रनि के साथ दौरि परतु है जित तित

त्रिपित न होतु कहूँ ऐसी गति लई है ।

इनके सुभाइ काजै जानतु है नेकु नही

बहकाएँ लागि जातु कहा चित ठई है ।

'जयसिंघ' परब्रह्म तिनकौ बिचार छोड़ि

माया माह भूलि रह्यौ जैसी मति गई है ।

सत्ति सुद्ध चेतन है आनँद सरूप महा

तिह में न चाह चाह झूठि ही में भई है ॥ 284 ॥

बीभत्स रस कौ लक्षण (दोहा)

दुरगँधि आलंबनु कहै महाकालु प्रभु जानु ।

घिनि थाई रँग नीलु है सो बीभत्स बखानु ॥ 285 ॥

282- धरिहै (जय.) में छूटा हुआ है । सुकुमार-स्वकुमार (जोध.) ।

284- तिह-तिन (जोध.) । कहूँ ऐसी गति लई है इनके सुभाइ काजै जानतु-(जोध.) में छूटा हुआ है । चाह चाह झूठि-चाह मूठ (जोध.) ।

वीभत्स कौ उदाहरण

राम हनें रापस करोरि करवाल काढ़ि
मुंड रुंड खंड कीवौ जाकौ सव फवही ।
हाड़नि कौ गूदि गूदि खात है पिसाच गूद
जुगिनी पियति अति लोहू काजै जबहीं ।
जंवुक जमाति आँत खेचै गहि दाँतनि सों
काग गीध मास काजै चौथत है सबहीं ।
पारावार के समान सोनित अपार बढ्यौ
बूड़ि बूड़ि ईसु लेतु सीसनि कौ तवहीं ॥ 286 ॥

अथ वत्सल रस

कर्यौ है विचारु कैऊ ग्रंथनि में रसु कहौ
कहे तें है कहा आइ थपौ निरधारि कै ।
जातें जीउ सुखु पावै रसु यहै ठहरायौ
पुनि नऊ रस तहाँ कहे निरवारि कै ।
घिनि हू सों रसु कहै तातें यौं अधिक रसु
सुत की कलोल सुख बहुत सिहारिं कै ।
साहित सु दर्पन कौ मतु पुनि 'जयसिंघ'
यातें दस रस जानि परत विचारि कै ॥ 287 ॥

(दोहा)

नर अरु पसु पंछीनि मै सुत के सुख कौ रोचु ।
ए बत्सल रस लहत है करि देखौ जिय सोचु ॥ 288 ॥
बंधु बंधु की प्रीति जो तासों कहियतु भाउ ।
वत्सल रस सुत सुख कहै जाहि सुनत चित चाउ ॥ 289 ॥
मित्र मिलै जौ सुखु रहै रसु राख्यौ नित आइ ।
दुख सों सब अनरस कहै प्रगटहि देतु बताइ ॥ 290 ॥

अथ वत्सल रस–लक्षण (दोहा)

नेहु जहाँ थाई कह्यौ सुतु आलंबनु आइ ।
ताके खेल कलोल जे ते उद्दीपन भाइ ॥ 291 ॥

287- कहे तें-काहे ते (जोध.) । निरधारि-निरघरि (जोध.) । सों-कौ (जोध.) । कहै-कहौ (जोध.) । सिहारि-सिहाइ (जय.) । सु दर्पन-सुदरसन (जोध.) । परत विचारि-परत हैं बिचारि (जय.) ।
288- मै-कै (जय.) ।
289- जो-जे (जोध.) ।
291- नेहु-जेहु (जय.) ।

ग्रीउ लगनि निरखनि हरषि ताके ए अनुभाउ ।
जिह तें सुखु दिन दिन लहै संचारी ठहराउ ॥ 292 ॥
कमल मध्य रँगु तिहि बरन देवी देवत जानि ।
रस दसयों बत्सल कह्यौ सो निहचे कै मानि ॥ 293 ॥

वत्सल रस कौ उदाहरण

बैठे धाम मध्य नंद जसुधा खिलावै कान्ह
कबहूँ किलकि हँसि ग्रीउ सों लगत है ।
कबहुँक मुसक्यात तोतरी कहत बात
तहाँ तात मात हू के मनहि रगत है ।
तब ताकी लेत है बलैया दोऊ दुहूँ कर
मोहि बतरस अति प्रेम में पगत है ।
'जयसिंघ' ऐसौ रसु दीसतु न दूसरौ है
सुत सुखु बूझि देखौ विदित जगत है ॥ 294 ॥

यथा

बातै कहि तोतरीं बढ़ावतु है हास रस
बतसल उपजावै खेलनि में अवही ।
अचिरजु बैन अदभुत कौ जनावै तहाँ
होतु है करुन आनि बिरझत जवहीं ।
उतसाह महा गोद लेत तहाँ 'जयसिंघ'
बीभत्स है यातें लार होत जात तवहीं ।
कछू डरवाएँ तें भयानक प्रगट होतु
सात रस बालक में बूझि देखौ सबही ॥ 295 ॥

यथा

नव रस मानत है तहाँ यह सक होति
घिनि माँझ कहौ कौन ठौर मोदु लहिए ।
बालक की बतनि तें नीकौ रसु होतु आनि
तिह कौ न जानै जाके सुनत उमहिए ।
रसु कह्यौ यातें जातें जीउ सुनि सुखु पावै
आवति विचारि यहै दस रस चहिए ।
'जयसिंघ' मोहन खिलायें तात मात, बात
बत्सल सु रस हू की कहाँ लगि कहिए ॥ 296 ॥

293- देवत-देवनि (जोंध.) ।
296- तहाँ यह-तहाँ जयसिंघ यह (जोंध.) ।

कारणान्यथ कार्याणि सहकारीणि यानि च ।

रत्यादेः स्थायिनो लोके तानि चेन्नाट्यकाव्ययोः ॥ 297 ॥

विभावा अनुभावास्तत् कथ्यन्ते व्यभिचारिणः ।

व्यक्तः स तैर्विभावाद्यैः स्थायीभावो रसः स्मृतः ॥ 298 ॥

चिदानन्दस्वरूपसाक्षात्कारो रसः । आनन्दांशे भग्नावरणतया आनन्दरूपतया प्रकाशमानं रत्याद्यवछिन्नचैतन्यं रसः । रसनीयत्वेनेति रसनमास्वादो निरतिशयसुखरूपता। चर्व्यमाणतैक प्राण इति । चर्वणा चानन्दाभिव्यक्तिः । स्वादः काव्यार्थसंभेदादात्मानन्द समुद्भव इति ।

विरुद्धो अविरुद्धो वा यं तिरोधातुमक्षमाः ।

आनन्दांकुरकन्दौऽसौ भावः स्थायियदास्पदम् ॥ 299 ॥

297, 298-ये छन्द मम्मट कृत काव्यप्रकाश से उद्धृत हुए हैं । पाठ को मूल ग्रन्थ (मम्मट कृत काव्यप्रकाश 4/27-28) के आधार पर संशुद्ध कर दिया गया है ।

299- उपर्युक्त संस्कृत गद्यांश संभवतः किसी टीका से उद्धृत हुआ है, आधार-ग्रन्थ मालूम नहीं हो सका । संभव है पद्यांश भी उसी टीका ग्रन्थ से उद्धृत हुआ हो ।

मम्मट कृत काव्यप्रकाश की नागोजी भट्ट विरचित टीका (द्वितीय संस्करण, पृष्ठसंख्या 119) में उपर्युक्त पद्य किंचित् परिवर्तित रूप में उल्लिखित हुआ है । टीकाकार ने स्थायीभाव विवेचन के सन्दर्भ में उपर्युक्त पद्य उद्धृत करते हुए लिखा है-'इति पूर्वाचार्योक्तं सामान्यलक्षणम् ।' भट्टजी द्वारा उल्लिखित पद्य में 'विरुद्धो अविरुद्धो' के स्थान पर 'विरुद्धा अविरुद्धा' है । शेष प्रायः समान ही है ।

साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ ने स्थायीभाव का जो लक्षण-निरूपण किया है उसकी शब्दावली भी इससे काफी मिलती-जुलती है -

अविरुद्धा विरुद्धा वा यं तिरोधातुमक्षमाः ।

आस्वादांकुरकन्दोऽसौ भावः स्थायीति संमत : ॥ 3/174 ॥

साहित्यदर्पण की साषि

स्फुटं चमत्कारितया वत्सलं च रसं विदु : ।

स्थायी वत्सलता स्नेह: पुत्राद्यालम्वनं मतम् ॥ 300 ॥

उद्दीपनानि तच्चेष्टा विद्याशौर्यदयादय: ।

आलिंगनांगसंस्पर्शशिरश्चुम्बनमीक्षणम् ॥ 301 ॥

पुलकानन्दवाष्पाद्या अनुभावा: प्रकीर्तिता: ।

संचारिणोऽनिष्टशंकाहर्षगर्वादयो मता: ॥

पद्मगर्भच्छविवर्णो दैवतं लोकमातर: ॥ 302 ॥

रस के लक्षण की साषि

कवि मंडन कृत रसरतनावली कौ दोहा

कबित सुनें नाटक सुनें हिय में हर्षु जु होइ ।

'मंडन' तासों रस कहें रीझि रहै मन भोइ ॥ 303 ॥

वाजपेई जयगोविन्द कृत कविसर्वस्व कौ दोहा

कारन कारज जे जगह सहकारी समुदाइ ।

रत्यादिक थाईनि के कवित नृत्त में आइ ॥ 304 ॥

ते बिभाउ अनुभाउ अरु ह्वै बिभचारी भाउ ।

प्रगटहि थाइनि सहित हीं आनँद कै भरियाउ ॥ 305 ॥

ताही सों रस कहत है जो उपजै इति भाँति ।

कबिबर बरनै ग्रंथ में अति हीं बाढै कांति ॥ 306 ॥

इति श्री राजा जयसिंघ बिरचिते काव्यरसे नवरस निरूपनो नाम सप्तमोध्याय: ॥ 7 ॥

अथ अलंकार–वर्णन (दोहा)

सक्ति आपनी बरनि कै रस सिगरे अरु भाउ ।

अलंकार अब कहतु हौ ग्रंथनि रीति डिठाउ ॥ 307 ॥

300-302-पाठ को मूल ग्रन्थ (छन्द संख्या-3/251, 252, 253, 254) के आधार पर संशुद्ध कर दिया गया है ।

303- 'मंडन' तासों रस-कबि मंडन तासों (सर्वत्र) ।

306- बरनै-बनै (जोध.) ।

इक सव्दालंकार है दूजौ अरथहि जानु ।
ते सुक्षम हौ कहतु हौं अपनी बुद्धि प्रमानु ॥ 308 ॥

अथ वक्रोक्ति अलंकार कौ लक्षण (दोहा)

बात कहै कोऊ कछू औरै ऊतरु देइ ।
बक्रोक्ति तिह सों कहें यहै जानि कबि लेइ ॥ 309 ॥

यथा

लालन की प्यारी तुहीं तो सी और नाहीं आइ
हौ ही कब कही नाही मो सी और घनी हैं ।
पी के मन आवती हैं बातें ते कहति तू हीं
नहीं मन आवै ताकों ऐसी आनि बनी है ।
मोहन वसत उर तेरे हौ हूँ निरमोही
जोई मन आवै सोई कहौ तुम्हे मनी है ।
चाह रही तेरी मेरी चाह रही भली भई
'जयसिंघ' अटपटी रीति यह टनी है ॥ 310 ॥

अनुप्रास कौ लक्षण (दोहा)

फिरि फिरि लै अक्षर जहीं रोचकु करै जुराउ ।
अनुप्रास तासों कहै जाकौ है यह भाउ ॥ 311 ॥

छेकानुप्रास कौ लक्षण (दोहा)

होइ तही आवृत्ति इक अक्षर कै यह होइ ।
अनुप्रास छेका कहै इहि बिधि जानौ सोइ ॥ 312 ॥

यथा

मोहन लाल सुहाति ती बाल सु हाहनि खात न देखन पावो ।
कौऊ कहै कितहूँ निकसी तितहीं तबही तुमही उठि धावो ।
देखन आई तुम्है 'जयसिंघ' सु ठाई निकाई तें फूलि कै गावो ।
चाह बढ़ी उह कौ अबहीं अब चाहिए जाइ कै ग्रीउ लगावो ॥ 313 ॥

308- सुक्षम-सुछम (सर्वत्र) ।

वृत्ति अनुप्रास कौ लक्षण (दोहा)

अक्षर एकहि की बहुत कै एकै आवृत्ति ।
कै बहुतनि की बहुतई अनुप्रास है बृत्ति ॥ 314 ॥

यथा

मोहन के मन के मनोरथनि केलि करै
किलकनि हसनि बसनि भई मन में ।
सुंदर छबीली तामें अतिही निकाई पाई
लागति सुहाई भाई देखियति धन में ।
बनी ठनी घनी महा राधिका कुवरि प्यारी
'जयसिंघ' सोहति है नारिनि के गन में ।
छतियाँ लगाइ लपटाइ अति हीं रिझाइ
पैम रस उरझाइ बाँधै गुन तन में ॥ 315 ॥

अनेक अक्षर की अनेक आवृत्ति कौ उदाहरण

नेंन बनै ठनै गनै तिय के है पिय काजै
हियरा करत बस लोचन लुभाए है ।
राति जगे पगे ठगे मोहन कौ तन मन
अतन के रस बस करे आपु भाए है ।
'जयसिंघ' अति ही रगीले है छबीले महा
अनियारे कजरारे भारे सुखदाए है ।
सोहत अमल मानौ नलिन सहित अलि
देखत ही कल पल चपल सुहाए है ॥ 316 ॥

लाटानुप्रास कौ लक्षण (दोहा)

सब्द वहै अरथै वहै भासतु है द्वै भाँति ।
सो लाटानुप्रास है जाकी ऐसी कांति ॥ 317 ॥

314- अक्षर-अछिर (सर्वत्र) ।
315- सुंदर-सुंदरि (जोध.) ।
316- भाए-भये (जोध.) । अनियारे-अन्यारे (जोध.) ।
317- लाटानुप्रास-लाटा अनुप्रास (जोध.) ।

यथा

सो किहि विधि आवै तिया लालन लैइ बुलाइ ।

सो किहि विधि आवै तिया लालन लैइ बुलाइ ॥ 318 ॥

यथा

लालन बुलावत सु आवै किहि बिधि तिय

आवो हम तुम ताहि देखि लीजै अबही ।

लालन बुलावत सु आवै किहि बिधि तिय

आवो हम तुम ताहि देखि लीजै अवही ।

फूल रही तहीं जहाँ रसु रह्यौ इहि भाँति

कौतिकु जनाइ देत सब काजै तवहीं ।

फूल रही तहीं जहाँ रसु रह्यौ इहि भाँति

कौतिकु जनाइ देत सब काजै तवहीं ॥ 319 ॥

यमक अलंकार कौ लक्षण (दोहा)

अक्षिरु फिरि फिरि आवही अर्थु औरई होइ ।

अलंकार है जमक यह ताकौ जानौ सोइ ॥ 320 ॥

यथा

पी कत पीक लगी पल में इन लोइन कौ इन कौइन हेरी ।

महाउर रेख महा उर में उर में उरमाल न जाति है फेरी ।

नेंननि नेंन जुरे नही जोरत जो रत ह्वै करि राति बसेरी ।

सोहै करौ द्रग सोहै करौ 'जयसिंघ' है कान्ह कौ कानि घनेरी ॥ 321 ॥

319- (जोध.) में द्वितीय चरण के स्थान पर तृतीय और तृतीय के स्थान पर द्वितीय चरण है ।

321- पल में-पलकैं (जोध.) । इन कौ-(जय.) में छूटा है । हेरी-हेरौं (जोध.) ।

श्लेष अलंकार कौ लक्षण (दोहा)

बात कहत ही एक के अर्थ लगै बहु ठौर ।
ताहि कहत अस्लेप है इह ते नाही और ॥ 322 ॥

यथा

सातौ दीप नऊ खंड बरिबंड भुजडंड
खल खंडिबे की एँड मेंड देखी अबहीं ।
अति हीं प्रचंड करै रुंडनि के ढंड झुंड
सुंड परे डुंड हू से खग्ग गह्यौ जवहीं ।
मारतंड सौ अखंड डंडतु अडंडनि कौ
मंडि राखौ धर्मु 'जयसिंघ' राम सवहीं ।
खुनस करायें अरु प्यार के करावत हीं
जैसें आगि बारि दएँ बरै बुझै तबहीं ॥ 323 ॥

अथ चित्र अलंकार

जहँ जुराउ तें बर्न के सोभा अति अधिकाइ ।
चित्र कबित तासों कहें जाकौ है यह भाइ ॥ 324 ॥

अन्तर्लापिका

तिहूँ लोक कौ धनी कहौ को आइ जगत महँ ।
निसि कौ दीपति करइ भरइ सुख नेंन लगत तहँ ।
सोभा कौ कह नाउ कहौ सो तहाँ बतावहु ।
सौ सहस्र कह होत सोधि तुम चित्तह ल्यावहु ।
किहि कहँ बस जोगी करत अवधि छाँड़ि कों चल्यउ बन ।
उत्तरु यह 'जयसिंघ' दिय सु रामचंद्र श्री लक्षमन ॥ 325 ॥

अथ वहिर्लापिका

प्रथम भूप कह बरनि सोई निज चित महँ आनउ ।
आठ पसेरी जोरि नाउ तिह कउ उनमानउ ।

322- लगै-गनै (जोध.) ।
323- एँड-औड (जोध.) । प्यार-प्यारे (जोध.) ।
325- सौ-सो (जोध.) । चित्तह ल्यावहु-चित्त लगावहु (जोध.) । यह-ज यह (जोध.) ।
लक्षमन -लछमन (सर्वत्र) ।

षोडस किहि की कला समुझि करि उर मह ल्यावहु ।
नीद माह को लगतु तिहे पुनि आनि मिलावहु ।
इन सब सबदनि सोधि करि आदि आदि अक्षर लहउ ।
'जयसिंघ' करत सुमिरनु सदा सुडिढ़ मतु करि चरननि गहउ ॥ 326 ॥

॥ रामचंद्र ॥

सर्वलघु कवित्त

बनक बसन अभरन गन अनगन
जगर मगर सब तन मन धन बस ।
नगर नगर जन घर घर जव तब
करत रहत सब कमल नयन जस ।
डगर बगर बन घन जल थल मय
चरन जलज जग जपत रहत रस ।
दरद हरत दरवर नर बर पर
तनक ढरत बगसत बर जरकस ॥ 327 ॥

इक अक्षरी दोहा

लाल लली लाली ललै लीला लै लै लाल ।
लीला लालै लै लली लौ लै लाला लाल ॥ 328 ॥

द्वि–अक्षरी दोहा

दान दैन दीननि दुनी दिन दिन दीनै दान ।
नदौ नदी नद दिन दिना दीननि दैन निदान ॥ 329 ॥

अथ द्वि–अक्षरी कबित्त

हारु हर्‍यौ हरि हेरि रही हौ रुराही हरै ही हरै हहरी है ।
रोहि रही रुरु राह ही राह रु हार ही हार ही हेरु हरी है ।

326-कउ-क (जय.) । अक्षर-अक्षिर (जय.) ।
327-करत-अब करत (जय.) । सब-अब (जोध.)। कमल-कम (जय.) । जलज-लज (जय.) ।
328-लै लली-लै ललली (जोध.) ।
329-दीनै-दीनौ (जोध.) ।

हारु रुरै रहि होरी रही हुरिहारे हहा रहुरारि ररी है ।

हीरा हरा हरि है ही हौ हेरौ हरै हरै हेरौ हो हाहा हरी है ॥ 330 ॥

पुनरुक्तवदाभास

एक अरथ के दो सबद तत्व बिचारै और ।

पुनरुक्तवदाभास है अलंकार तिहि ठौर ॥ 331 ॥

यथा

आई नारि तो पै हौ तूँ मानु कही मेरी अव

बानकु सरसु करि उठि चलु लाल पै ।

कर कर हाथ करि उनकौ रिसाति कहा

सुमन ह्वै सुख सों पहिरि फूल माल पै ।

चाहत हैं तोहिं निरखत मग बार बार

'जयसिंघ' कहूँ रुखु दैहै और बाल पै ।

राखु छपा·रैनि तुहीं सपतें करति होहीं

तिलकु सौ सदा रहु सौतिनि के भाल पै ॥ 332 ॥

दोहा

पहिल कही बक्रोक्ति कों अनुप्रास पुनि तीनि ।

जमंक और अस्लेप हैं चित्र अनेगन बीनि ॥ 333 ॥

पुनरुक्तवदाभास कहि छह सब्दालंकार ।

अब अर्थालंकार ह्याँ कहियतु है निरधार ॥ 334 ॥

इति श्री राजा जयसिंघ बिरचिते काव्यरसे सब्दालंकार बर्ननं नाम अष्टमोध्याय: ॥ 8 ॥

अथ अर्थालंकार—वर्णन

उपमालंकार कौ लक्षण (दोहा)

समसरि कीजै और की जिह कों सोभा होइ ।

अलंकार उपमा कहै यह जानौ सब कोइ ॥ 335 ॥

यथा

जैसी भाँति घन मोर कहिए चकोर चंद

रीझ रस बस भए लखे ऐसे भाइ है ।

चातक ज्यों रट लावै स्वाति काजै तन मन

इहि बिधि 'जयसिंघ' बसी चित आइ है ।

राधिका अनूप रूप मोहनी है मोहन कौ

बैन कहै कोकिल लौ महा सुखदाइ है ।

प्रेम रस उरझे है नेंन एँन लालन के

अलि जैसें नलिन कौ रहतु लुभाइ है ॥ 336 ॥

यथा

किलकि कै हँसनि करत बस नेंननि कौ

अधर सुरंग जब नेंकहू हलत है ।

बिंबी औ पवाँरी तेऊ वारि वारि डारी

नहीं समता निहारी नग लालन दलत है ।

'जयसिंघ' मोहन है मोहन है मोहन कौ

सोभा उमगति तहाँ मनहि छलत है ।

सुंदर बदन छबि देखी स्याम दसननि

अंबुज तें अलि मानौ निकसें चलत है ॥ 337 ॥

अनन्वय अलंकार कौ लक्षण (दोहा)

ताही की ताकों तहाँ उपमा दीजै आनि ।

ताहि अनन्वय कहत है जेहै सब बिधि जानि ॥ 338 ॥

336-कोकिल लौ-कोकिलौ (जोध.) । लुभाइ-सुभाइ (जोध.) ।

337-यह छन्द (जोध.) में नहीं है ।

338-अनन्वय-अन्वनय (सर्वत्र) ।

यथा

दीरघ अन्यारे कजरारे रस भरे भारे
सुंदर सुढारे देखि पति मति मोहिए ।
कंज मीन मृग द्रग खंजन न सम पावै
उपमा कौ जिनकी न दूजौ औरु टोहिए ।
'जयसिंघ' मोहन कौ तनु मनु बस कियौ
राधिका कटाछ अदभुत गति रोहिए ।
अति हीं रगीले है छवीले चटकीले महा
तैरेई से तेरे नेंन तेरे मुख सोहिए ॥ 339 ॥

उपमेयोपमा कौ लक्षण (दोहा)

याकी वा कहि दीजिए वाकी उपमा याहि ।
उपमेवोउपमा कहै ग्रंथनि कौ मतु चाहि ॥ 340 ॥

यथा

आननु तेरौ कहें ससि सों ससि हूँ पुनि जोति लई मुख ही की ।
जौन्ह लखै सम लागति गात की गात मै जौन्ह सी है सुख ही की ।
चाँप समान भई तहँ भौह कौ भौंहै है चाँपहि के रुख ही की ।
रूप अनूप बनी अति राधिका मेंटन मोहन के दुख ही की ॥ 341 ॥

उत्प्रेक्षा कौ लक्षण (दोहा)

जिहि बिधि जौनई बस्तु हैं ऊर्ट्ठ कौ नई रीति ।
तासों उत्प्रेछा कहै कांति होइ परतीति ॥ 342 ॥

यथा

नलिन रचे है मानौ नेंननि की सम काजै
देखत ही मन आवै सव कै यों तवही ।
पूरन रच्यौ है ससि जोरिबे को आनन सों
अमृत सदन करि सोभा दई सबही ।

339-अन्यारे-अनयारे (जय.) ।

कोकिल रची है पटतर काजै बैननि के
'जयसिंघ' हमहू कौ जानि परी जबही ।
मोहनजू राधिका अनूप रूप सुंदर है
मेरे जान इन आगें सबै बाल दबही ॥ 343 ॥

सन्देहालंकार कौ लक्षण (दोहा)

कई भाँति जो वस्त में धोखौ उपजै आनि ।
अलंकार संदेह सो कहत ग्रंथ मति जानि ॥ 344 ॥

यथा

खंजन कै अंवुज कै मीन फूल नरगिस
कैधौ म्रग द्रग ऐसौ धोखौ करै जिय कौ ।
मोतिनि की पानिप कै पानिप रतन हू की
मोहत है निज करि मोहन से पिय कौ ।
'जयसिंघ' राधिका कुवरि बृपभानजू की
ऐसी छवि नाही लखी काहू और तिय कौ ।
कैधौ तेरे नेंन कैधौ ऐन सर मैन हू के
नेंक की लगनि माँझ बेधि जात हिय कौ ॥ 345 ॥

रूपक अलंकार कौ लक्षण (दोहा)

भेदु नही जिहि ठौर में सम ताही के जोग ।
तासों रूपक कहत है जेहै समुझे लोग ॥ 346 ॥

यथा

छूटि रही अलकै छबीली अति सोहनी है
मोहति है मनु देखि घटा भई ऐन है ।
भोंहै सुरचाप बगपाँति मुकताहल है
दामिनी हसनि सु वढ़ावै अति चैन है ।
कोमल बचन सु गरज होति मंद मंद
'जयसिंघ' अदभुत बस करि लैन है ।
मोहन कौ मनु मोहि मोर लौ मगन कियौ
अति रस बरसनि महा सुख दैन है ॥ 347 ॥

343-इन-इयाके (जोध.) ।

345-करै जिय कौ-करौ जिय मै (जोध.) । कै पानिप रतन-र कै पानि तन (जोध.) । सर-रस (सर्वत्र) ।

<u>अपह्नुति अलंकार कौ लक्षण (दोहा)</u>

बरननु जाही कौ करै उथपि थापिए और ।
ताहि अपन्हुति कहत है अलंकार इहि ठौर ॥ 348 ॥

<u>यथा</u>

पीतम चकोर कैसी टक लाई निरखत
अधर सुधामय है लालन के मन कौ ।
जिह की निकाई भाँति भाँति पै न कही जाइ
अति ही सुहाई भाई सुंदरता धन कौ ।
'जयसिंघ' यह छबि देखि मोहे मोहनजू
तारे सम गनि तिय और के बदन कौ ।
नेंक ही हसत तहाँ जौन्ह सी जगमगाति
आननु न तेरौ चंद सोभा अनगन कौ ॥ 349 ॥

<u>श्लेष अलंकार कौ लक्षण (दोहा)</u>

कहै एकई बात कै अर्थ जहाँ द्वै होइ ।
अलंकार अस्लेप है जानौ निहचै सोइ ॥ 350 ॥

<u>यथा</u>

बरसनि बरसत लोकनि त्रिपत करै
दारिद बहावत है दीननि के छिन में ।
तपन मिटावत है खलक की भाँति भाँति
सुखु उपजावै 'जयसिंघ' महा तन में ।
दान देत जीवनि जगत प्रतिपालत है
त्यों त्यों अति भावत है सबही कौ मन में ।
तिनकी निकाई की बड़ाई करौ किहि विधि
एते गुन भरे पूरे देखे स्याम घन में ॥ 351 ॥

349- आननु न तेरौ-आननु तेरौ (जोध.) । अनगन-अनतन (जोध.) ।
351- भाँति भाँति-भाँति (जोध.) ।

<u>समासोक्ति अलंकार कौ लक्षण (दोहा)</u>

बरननु कीजै और कौ उहा जनावै और ।

समासोक्ति तासों कहें अलंकार तिहि ठौर ॥ 352 ॥

<u>यथा</u>

ढूँढति फिरति बड़ी बार की हौ ठौर ठौर

कोऊ न वतावै नही देख्यौ कहूँ अवही ।

जहाँ जहाँ कही तहाँ तहाँ गई कैऊ बेर

मिलत न मोहि हौ निरखि आई सवही ।

तुम ही जौ जानौ तौ बताइ देउ 'जयसिंघ'

उमग हुलास मोकों बाढ़ि जाइ जवही ।

मेरी उरमाल सो उतारि कै रसिक लाल

मोहन ने हाथ दई कौन कै धौं तवही ॥ 353 ॥

<u>निदर्शना अलंकार कौ लक्षण (दोहा)</u>

द्वै वातें संसर्ग विनु उपमा सों निरधार ।

अलंकार सु निदर्सना कवि करि कहत विचार ॥ 354 ॥

<u>यथा</u>

कहाँ लौ सुजसु तेरौ करि सकौ किहि भाँति

सेसऊ गनेस बचनेस से थके सवै ।

मेरे एक रसना 'रु मंद बुद्धि लघुताई

कैसें कै बड़ाई गाई जाति कौन सों कवै ।

'जयसिंघ' एते पर निसु दिनु ध्यावतु हौ

बरननु कर्‌यौ चाहौ तेरे गुन कौ अबै ।

एक पाइ हय जैसें धायौ चाहै धरनी में

नान्है मुह बड़ी बात कहौ कैसिहूँ फबै ॥ 355 ॥

353- बड़ी-बढी (जय.) । ने-के (जोध.) ।

अप्रस्तुतप्रशंसा अलंकार कौ लक्षण (दोहा)

बात कही कछू और सों लै औरहि कौ नाउ ।
अप्रस्तुतिप्रसंसई अलंकार तिहि ठाँउ ॥ 356 ॥

यथा

जौ पै कैकी काजै अति हरपु बढ़ावत है
कोकिल मुदित होत घनी अमराई मै ।
दादुल औ झिल्ली सु कलोलति अनेग भाँति
बगपाँति फिरति है आपु मनभाई मै ।
जौ पै द्रुम हरे भरे करे है धरनि पर
'जयसिंघ' सबै आपु स्वारथ निकाई मै ।
चारि मास बरसतु तरसै नएई ताहि
चातिक कै स्वाँति बूदि रट सुखदाई मै ॥ 357 ॥

अतिशयोक्ति अलंकार*

प्रथम भेद (निगीर्याध्यवसान) कौ लक्षण (दोहा)

बिन उपमैयहि बरनिएँ जिहि जागा उपमान ।
अतिसयोक्ति कौ भेदु यह पहिलौ गनत सुजान ॥ 358 ॥

यथा

इंद तन हेरत निरखि रहै इकटक
गजगैन सोऊ निज उर में बसति है ।
मृग द्रग मीन और खंजन निहारत है
अंबुज की भावै जोई दीपति लसति है ।

357- कैकी काजै-कैकीजै (जोध.) ।

*- हस्तलिखित प्रतियों में इसके स्थान पर 'अतिसयोक्ति कौ लछन' शीपंक है, किन्तु इसके बाद जो 358 संख्यक दोहा है वह वस्तुत: अतिशयोक्ति के प्रथम भेद का लक्षण है । यह बात उदाहरण से पूर्व 'यथा' के साथ 'निगीर्जाधिवसान' के उल्लेख से भी स्पष्ट हो जाती है । हमने 358 संख्यक दोहे से पूर्व एक और शीपंक के रूप में अपनी ओर से 'प्रथम भेद' लिखकर और उदाहरण (छन्द संख्या 359) के पूर्व के शीपंक 'निगीर्याध्यवसान' को इसके साथ देकर अस्पष्टता को दूर करने का प्रयास किया है ।

358- पहिलौ-पहिलै (जोध.) ।

सीफल कों हाथ लेइ कबहूँ लगाइ उर
'जयसिंघ' इहि भाँति भावना गसति है ।
अहिनि कौ गहै धाइ मोहन कै यह भाइ
दामिनि कौ हेरि मानौ जानत हसति है ॥ 359 ॥

अतिशयोक्ति कौ दूसरौ भेद (दोहा)

बस्तु बरनिबै जौन है औरै कहिए ताहि ।
अतिसयोक्ति कौ दूसरौ भेदु कहत है याहि ॥ 360 ॥

यथा

आनन की औरई निकाई पाई अधिकाई
औरै गति नैंननि की नीकीयै दिखाति है ।
बैननि की धुनि लागै औरई सुहाई कान्ह
लाली अधरनि और अति ही सुहाति है ।
'जयिसंघ' राधिका की औरई बिराजै भाति
नित सरसाति कांति कहा नहीं जाति है ।
औरै प्रीति औरै रस औरै रीति तहाँ यह
दिन दिन औरै रीझ निपट निकाति है ॥ 361 ॥

अतिशयोक्ति कौ तीसरौ भेद (दोहा)

ऐसी भाँति जु होइ तौ वाकी सरवरि होइ ।
अतिसयोक्ति कौ तीसरौ भेदु बताऊँ सोइ ॥ 362 ॥

यथा

अंबुज से द्रग होइ तहाँ अरु बैन सु कोकिल कै से सुहायौ ।
बिंबी से सोहन कौ अधरा दुति दातनि दामिनि लौ सुखदायौ ।
चाँप सी भौहनि में छबि पावतौ यों 'जयसिंघ' लगै मनभायौ ।
चंद बराबरि आनन तेरेकै ऐसौ जु होइ तौ जातु बतायौ ॥ 363 ॥

363- सुहायौ-सुयौ (जय.) । जु-जो (जोध.) ।

अतिशयोक्ति कौ चौथौ भेद (दोहा)

कारज उपजै प्रथम ही पीछै कारनु होइ ।

अतिसयोक्ति कौ भेदु यहु चौथौ निहचै जोइ ॥ 364 ॥

यथा

आठौ सिद्धि नऊ निद्धि सहज ही आवति है

जानियें न कब कोऊ धरि गयौ धाम मै ।

रतन अनेग और भूपन गनै न जात

बावन लौं बढ़ि जात तहाँ एक जाम मैं ।

'जयसिंघ' अदभुत गति न कही परति

परगट देखियतु जैसी यह राम मै ।

जननि के प्रथम हीं पूरत मनोरथ है

पाछै तै मगन मनु होतु जाके नाम मै ॥ 365 ॥

प्रतिवस्तूपमा कौ लक्षण (दोहा)

सरवरि सों द्वै निबहती आखर कहिए और ।

जानौ प्रतिवस्तूपमा अलंकार तिहि ठौर ॥ 366 ॥

यथा

आनन तुम्हारे की निकाई सदा एक सी है

दीपति सुहाई अधिकाई चित में गहै ।

रैनि दिन जोति अति होति जाति भाँति भाँति

छबि सरसाई महा सुंदरता कौ लहै ।

बढ़ि बढ़ि घटि घटि गुपित प्रगट ससि

होइ न समान मन केतौ क्यों न उमहै ।

करै किन कोटिकौ उपाउ यह बार बार

पनाँ पटतर काँचु कैसै करि निबहै ॥ 367 ॥

364- पीछै-पाछै (जोध.) ।

365- बावन-बांव (जोध.) । परति-परति परति (जय.) ।

366- प्रतिवस्तूपमा-प्रतिपमा (जोध.) ।

367- की-ई (जोध.) ।

दृष्टान्त अलंकार कौ लक्षण (दोहा)

एक रीति द्वै बस्तु की मिलै एक ही छाँह ।
अलंकार द्रष्टांत जो सो जानौ इहि माँह ॥ 368 ॥

यथा

बहुत बिकल भई राधिका कौ चैनु नाही
भूषन बसनऊ सम्हारि न सकति है ।
हेरति न ससि तन हँसि कै न बोलति है
खेलै न सखिनि साथ ऐसी भई गति है ।
मनु बहराइ कै उपाइ करै 'जयसिंघ'
आली कही केती बातें हर्‌यौ चाहै मति है ।
मोहन तुम्हारे देखें वाकौ अति सुखु होतु
स्वाँति बिनु चातिक की मैंटै को अरति है ॥ 369 ॥

दीपक कौ लक्षण (दोहा)

बरननु कीजै जाहि कौ अरु औरुहु में जानु ।
एक धरमु कहिए जहाँ दीपकु ताकौ मानु ॥ 370 ॥

यथा

ए जौ होइ अपनै मनोरथ के माफिक तौ
चित्त लगै निजु कै अनंदु होइ तन में ।
जाकौ जौनु कामु तहाँ तिहि बिधि सुखु देत
बिसरै न नेंकु ऐसे बस रहै मन में ।
पति कौ सुभाउ लियें चलति है निस दिनु
'जयसिंघ' येई सब उपजत खन में ।
करदे न काम आवै कामिनी कमान तुरी
राम की क्रपा तें मिलै भरे गुन गन में ॥ 371 ॥

368- रीति-री (जय.) ।
369- कौ-कै (जोध.) ।
370- दीपकु-दीयेकु (जोध.) ।
371- करदे न-कर रैनि (जोध.) ।

मालादीपक कौ लक्षण (दोहा)

यातें वा बातै अवर सोभा जामें होइ ।
मालादीपकु कहत है अलंकार है सोइ ॥ 372 ॥

यथा

नलिन तें ताल और ताल ही तें बागु नीकौ
बाग तें है नीके फूल फूलन तें भौर है ।
भौर ही तें कोइल कौ बोलिबौ लगतु नीकौ
बोलिबे तें अमराई तातें नीकौ मौर है ।
मौर तें बसंत रिंतु अधिक सुहावनी
बसंत तें तौ राधाजू बिराजै उहि ठौर है ।
राधिका तें प्रीति अरु प्रीति तें सरसु रसु
'जयसिंघ' मोहन तें कहूँ कछू और है ॥ 373 ॥

तुल्ययोगिता कौ लक्षण (दोहा)

एक तरह जो बहुत की कहिए नीकी भाँति ।
तुल्यजोग्यता जानियें अलंकार की कांति ॥ 374 ॥

यथा

नेंन बस करती है रूप हाइ भाइनि कै
कोकिल सी बोलि बस करै कानि मत्रि ही ।
नासिकै लुभाइ राखै सकल सुगंधनि कै
अमृत अधर पियें बढ़ै रुचि गति ही ।
गात सों लगत गात अंग अंग सुखु होतु
'जयसिंघ' तातें कान्ह भए रहे रति ही ।
सुतु सौ रतनु होतु जाके रस रंग ही तें
पाँच इंद्री त्रिपित है नागरि मै अति ही ॥ 375 ॥

व्यतिरेक अलंकार कौ लक्षण (दोहा)

बरनत है उपमान तें उपमेयह अधिकाइ ।
अलंकार व्यतिरेक यह दीनौ तहाँ जताइ ॥ 376 ॥

375- कानि-कांन (जोध.) । गात-गोत (जोध.) । सुतु-सुत (जोध.) ।

यथा

घटतु बढ़तु यह बासर न जोति रहै
कहत कलंकी वाहि बिरही कदन कौ ।
ऊ तौ रैनि आवत हीं निपट लजाइ जाइ
कैसें मनु पतियाइ रमा के सदन कौ ।
अति ही छबीलौ जगिमगि रह्यौ 'जयसिंघ'
जिह है रिझायौ कान्ह मूरति मदन कौ ।
कमल औ' चंद सौ कहत है बदनु तेरौ
चंदु औ' कमल कहा पूजत बदन कौ ॥ 377 ॥

यथा

चंपक कुंदनु अरु केतुकी कुसम तन
समता कौ पावै न बिचारे सब ठौर है ।
अति ही छबीली रूप मोहनी है मोहन कौ
'जयसिंघ' जाके पटतर कों न और है ।
सुंदर बदन पै मलिन से नलिन लागें
समसरि दीबे काजै कीन्ही मन दौर है ।
चंदऊ जु रच्यौ विधि दीपति न पाइ सकै
सदा भरी कला वामै पोडसऊ जौ रहै ॥ 378 ॥

आक्षेप अलंकार कौ लक्षण (दोहा)

औरै चाहतु है कह्यौ मैटै थापै और ।
अलंकार आछेप सो जानि लेउ तिहि ठौर ॥ 379 ॥

यथा

जात जितै तुम जानति है हम मानत नाहिनें मोहन प्यारे ।
बाल कौ लाल लग्यौ मनु हाल भयौ उर साल यै नेकु निहारे ।
जाउ चले हमै स्वारथ का कहिए सब बात बढ़ाइ किसा रे ।
मोहि परी 'जयसिंघ' कहा जु'ब बूझै तें बात कहौगी तिहारे ॥ 380 ॥

377-बासर न-बासरनि (जय.) । रहै-लहै (जय.) । कलंकी-कलंक की (जोध.) ।
380-स्वारथ-(जोध.) में छूटा है । (जोध.) में अंतिम पंक्ति दो बार लिख गई है । पहली बार इस प्रकार है-मोहि परी जयसिंघ कहा जुब बूझै ते बात बढाइ किसा रे ।

विभावना अलंकार कौ लक्षण (दोहा)

कारन तौ उपजै नही कारज होइ निदान ।

तासों कहत बिभावना अलंकार परिबान ॥ 381 ॥

यथा

दानु नही दियौ नही साजे दल फुरमाए

अचिरजु बाढ़ि गयौ देखत हीं मन कौ ।

कबहूँ न कहूँ भई देखी न ही सुनी गई

'जयसिंघ' जेते गुन सोहै स्याम घन कौ ।

अरिनि के नैर उदबास वेऊ बनंबास

भूखऊ पियास सहै दुखु देत तन कौ ।

साधुनि के भवन रतन भरे देखियतु

कौतिकु सौ लागतु है तहाँ जन जन कौ ॥ 382 ॥

विशेषोक्ति अलंकार कौ लक्षण (दोहा)

उपजतु कारज है नही कारन तें जिहि ठाँऊ ।

बिसेपोक्ति यों कहत है अलंकार कौ नाउ ॥ 383 ॥

यथा

जानि अकेले तहाँ 'जयसिंघ' सु रापस बैरु करै तबही तें ।

झुंड निसाचर कोरि ठिले सुर देखत हीं सु भए भयभीते ।

दूषन बालि हन्यौ दसग्रीउ कहा लौ गनौ मै अनौखीए रीतै ।

खेत में एँड़ सों पेंड़ धरै हकनाहक रामजू जीतैई जीतै ॥ 384 ॥

यथासंख्य अलंकार कौ लक्षण (दोहा)

बहुतक बस्तै बरनियें क्रम तें अर्थ मिलाइ ।

जथासंख्य तासों कहें अलंकार सो आइ ॥ 385 ॥

382-नैर-नेंर (जोध.) ।

383-बिसेपोक्ति बिसोपोक्ति (जोध.) ।

385-कहें-कहौ (जोध.) ।

यथा

बाननि के जोर करि दया अति मोहु करि
सुखु निसि भोर करि रहै सु चुपाइ कै ।
समर में साँकरे में सेज रस रंग ही में
जाकौ जैसें चाहें ताकों तैसें होत आइ कै ।
महा दुखदाई अरु क्रपावंत अति ही है
प्रीति निज 'जयसिंघ' देत है जनाइ कै ।
इहि बिधि रामचंद्र अरिनि कौ जननि कौ
सीताजू के मोहिबे कौ कहै जात गाइ कै ॥ 386 ॥

अर्थान्तरन्यास कौ लक्षण (दोहा)

जो अस्थापै और तै बड़ौ कि छोटौ होइ ।
यह अर्थांतरन्यासु है अलंकार कहि सोइ ॥ 387 ॥

यथा

अंबुज बारि गुलाब उसीरहि तातें गनावै बियोगिन कोऊ ।
याकी निकाई कौ दोसु लगावत दोषु है आपु में जानत सोऊ ।
कान्ह के ध्यान मिटै तन ताप महा सुखु दैन बतावत वोऊ ।
वेई निबाहु करै 'जयसिंघ' जे आनँददानि सबै दुखु खोऊ ॥ 388 ॥

विरोध अलंकार कौ लक्षण (दोहा)

पहिलें लगै विरोध सों जानौ आछौ आइ ।
तासों कहत बिरोध तहँ अलंकार ठहराइ ॥ 389 ॥

यथा

चंदनु औ' चाँदिनी चमेली चारु चौसरु है
घनसारु वोरेऊ उसीर मगवाइ कै ।
सीतल समीरु नाइ छिरकि गुलाबनीरु
सोंधे कौ लगाइ सेज कंज बिछिवाइ कै ।

388-(जोध.) में तृतीय पंक्ति छूटी हुई है ।
389-जानौ-जानै (जोध.) । तहँ-सो ताहँ (जोध.) ।

ल्याइ कै म्रनाल हाल और मौर लै रसाल
देखिए निकट ताल नीकौ रागु गाइ कै ।
भावत न वेई बिन मोहन के 'जयसिंघ'
आँग सों लगाएँ होत आगि कैसे भाइ कै ॥ 390 ॥

स्वभावोक्ति अलंकार कौ लक्षण (दोहा)

जैसे कों तैसौ कहै क्रिया सुभाउ बखानि ।
अलंकार सोहै सही सुभावोक्ति यह जानि ॥ 391 ॥

यथा

प्रथम ही दीननि दयाल सरनागतनि
खल खंडिबे कों जेऊ लेत अवतार है ।
धरम की मिति बाँधि अनरीति नासु करै
प्रथबी के डारत उतार सब भार है ।
रमि रहे तिहूँ पुर रामचंद्र जित तित
सुर नर नाग बस न्यान निरधार है ।
'जयसिंघ' जाकै ध्यान कामना सफल होति
निहचै बिचारि देखौ लखियै अपार है ॥ 392 ॥

व्याजस्तुति अलंकार कौ लक्षण (दोहा)

अस्तुति निंदा कीजिए उलटी होइ निदान ।
ब्याजस्तुति तासों कहें अलंकार परिवान ॥ 393 ॥

यथा

तुरत हथ्यार छोंड़ देत रन पीठि देत
देसु छोड़ि देंत चित राखत न आस है ।
धनु देत दारा देत परम सरम देत
घरु तजि देत जाइ करै बनबास है ।
जोई तुम चाहत हौ सोई देत रामचंद्र
'जयसिंघ' तेरौ तन मानत तरास है ।
ऐसौ दानु अरि तेरे देत रहैं निसि दिनु
कबि क्यों धौ नाउ धरै जात नही पास है ॥ 394 ॥

394-हथ्यार-हथयार (जोध.) ।

यथा

बैरी कौ न बिजै देत लेत न सरन कहूँ
नारिनि बिरानी अंग संग सुखु देत है ।
बिकट कठिन चाँप खेंचि तहाँ बान मारै
रापस के जीउ सु तुरत हरि लेत है ।
चोर कों न अभै देत डंडु नही साधुनि कौ
कलि माँझ सुमिरें तें रछ्या के निकेत है ।
'जयसिंघ' राम के लखत गुन इहि भाँति
सुर मुनि करत बड़ाई किहि हेत है ॥ 395 ॥

सहोक्ति अलंकार कौ लक्षण (दोहा)

कहत एक ही साथ कै क्रिया दुहिनि अधिकाइ ।
ताहि सहोक्ति कहत है अलंकार अरथाइ ॥ 396 ॥

यथा

दया हू के साथ बढ़ि जातु है धरमु तहाँ
दान ही के साथ जसु बढ़ै छिति छोर लौ ।
नऊ खंड नाउ तेरौ साथ ही प्रताप बढ़ै
पारावार पार जगु जपै साँझ भोर लौ ।
खल खंडै बरिबंड तस कर ढंड संग
अनरीतै मैटतु है अरिनि के सोर लौ ।
'जयसिंघ' रामचंद्र सब गुन भरे रूरे
दारिद बहाइ कै निबाहि देत वोर लौ ॥ 397 ॥

विनोक्ति अलंकार कौ लक्षण (दोहा)

कहौ और बिन और सौ होइ भलौ कै मंद
ताहि बिनोक्ति कहत है अलंकार निरदंद ॥ 398 ॥

395-तुरत-तरत (जोध.) । रछ्या-रक्षा (जोध.) ।
398-और बिन-(जय.) में दो बार लिख गया है ।

यथा

अंबुद के छए बिनु सोहतु है निसि ससि
निसि बिनु अंबुज की दीपति दिखाति है ।
मान बिनु प्रीति रीति बढ़ति है छिन छिन
लाज बिनु महा रस रीति बाढ़ि जाति है ।
अंजनु बिना हीं नेंन सोभा नही पावत है
बसन बिना ही कहा कामिनी सुहाति है ।
'जयसिंघ' रामचंद्र नाम बिनु लीन्है ही तें
नीके कै बिचारौ तौ रहति नही भाति है ॥ 399 ॥

परिवृत्ति अलंकार* कौ लक्षण (दोहा)

होतु जहाँ जिहि बात कौ अदलौ बदलौ आनि ।
अलंकार परिवृत्ति यह सो निहचे कै जानि ॥ 400 ॥

यथां

प्रीति रीति दीजतु है लीजतु है सुखु तहाँ
दान मान दै करि निकाई जसु लेत है ।
डंडु दै अडंडनि सों डंडु लेत तेही छिन
कंचनु दै रतननि भरत निकेत है ।
'जयसिंघ' रामचंद्र देख्रियतु इहि भाँति
कारज कौ निज करि अधिक सचेत है ।
बान दै दै अरिनि के लेत प्रान तेही घरी
तुरत भगाइ देत जीति लेत खेत है ॥ 401 ॥

भाविक अलंकार कौ लक्षण (दोहा)

लगति प्रगट सी हो गई हौनी जो कछु होइ ।
तासों भाविक कहत है अलंकार है सोइ ॥ 402 ॥

यथा

रावन मारें भए दिन केतेऊ गीत पुराननि बात नई सी ।
संकट आएँ सहाइ करै सु बढ़ी परतीति की रीति बई सी ।
देखै अजुध्या कें राम के राज की पाई निकाई यों आजु भई सी ।
यों निहचंति करी दुनियाँ 'जयसिंघ' सु आनँदकंदमई सी ॥ 403 ॥

399- अंबुद-अंबुज (जोध.) ।
*- अलंकार -अनुप्रास (जय.) ।
400- बदलौ-बदनौ (जोध.) ।

काव्यलिंग कौ लक्षण (दोहा)

होइ अरथु जो सब्द कौ देत जहाँ कहुँ आनि ।
काव्यलिंग तासों कहै अलंकार सो जानि ॥ 404 ॥

यथा

नेंन लगे रस रंग पगे अति रैनि जगे सु ठगे रस कौनें ।
रूप लखाइ लए ललच्याइ दिखाइ सुभाइ भए बस हौनें ।
हौ समुझी 'जयंसिंघ' तबै नही लोइन लाल लगे तन लौनें ।
चाह कौ जानि कै मानती यों पिय लाडी दुलारी जो आवति गौनें ॥ 405 ॥

पर्यायोक्ति कौ लक्षण (दोहा)

सब्दहि सों अरु बिंग्य सों अरथु जानियें जोनु ।
सोई पर्यायोक्ति यह अलंकारु है तौनु ॥ 406 ॥

यथा

जाहि निरखे तें तिय तजती हें काज लाज
रीझि बस होति तन सुधि भूलि जाति है ।
जाके लखें तुरत हीं बिसरि गुमानु जाइ
रछस दबित्त भागि जात इहि भाँति है ।
मूरति छबीली पर कोटि काम वारियतु
'जयसिंघ' रामचंद्र अदभुत काँति है ।
जाकौ ध्यानु धरें ग्यानु होतु परिपूरन है
दरसन पावत हीं आखें सियराति है ॥ 407 ॥

उदात्त अलंकार कौ लक्षण (दोहा)

संपति अधिक जनावई सोभा सों जिहि ठौर ।
अलंकार सु उदात्त है यातें नाही और ॥ 408 ॥

यथा

गजनि के घंटनि कौ सोरु होतु निसि दिन
हयनि की हीस परिपूरि रही सब ही ।

405- लोइन लाल लगे-लाल ये आखे (जोध.) । जो-ज्यौ (जोध.) ।
407- तजती-तजी (जोध.) ।

बाग औ' तड़ाग नए होत जात दिन दिन

मोती माल सुखपाल बगसे हें तब ही ।

जरकसु नगर जराउ जगिमगि रह्यो

रतनमै मंदिर ए देखे कौनें कब ही ।

'जयसिंघ' राम तीनौ लोक पति राजतु तू

जेतिऐ निकाई तेती तेरी दई फब ही ॥ 409 ॥

समुच्चय अलंकार कौ लक्षण (दोहा)

बस्त कहत हीं एक के बहुतक होइ सहाइ ।

ताहि समुच्चय कहत है अलंकार ठहराइ ॥ 410 ॥

यथा

स्याम घटा उठि तैसीय आई' रु तैसीय मोरनि कूक सुनाई ।

सीतल तैसी बयारि बहै अरु तैसीय बूँदनि घात बनाई ।

तैसेई बेल के फूलनि बासु है सोंधे की बासु महा सुखदाई ।

कान्ह के साथ तहाँ 'जयसिंघ' सु पूजी अबै मन की मनभाई ॥ 411 ॥

पर्याय अलंकार कौ लक्षण (दोहा)

बस्त तहाँ होइ एकई बहुत टौर क्रम देखि ।

ताहि कहत पर्जाय है अलंकार सो लेखि ॥ 412 ॥

यथा

तब कहें होतु है महीपति भएँ तें मोदु

कामना त्रिपत काजै राखत बिचारि कै ।

पुनि इंद्र भएँ कहें अति हीं हुलासु होतु

सब ठौर औरनि ने कही निरधारि कै ।

फिरि कहें होतु बयकुंठ माँझ भाँति भाँति

मेरे जान एऊ सब दीजै अब डारि कै ।

मोहन के सखा भए खेले साथ 'जयसिंघ'

कोटिक मै सुख डारौ एही पर वारि कै ॥ 413 ॥

409-रतनमै-रतनमें (जय.) ।

दूसरौ भेद (दोहा)

बात बहुत जहँ एक में कहिए बुद्धि प्रकास ।
द्वितीय भेद पर्जाय कौ जामें नहि उसवास ॥ 414 ॥

यथा

उपबन घाट बाट फिरति है अलवेली
दूती दुखु पावति है तेही छिन हटकै ।
सासु अरु ननदी औ' गुरजन अनख्यात
ज्यों ज्यों और धरै नाउ हितुनि कौ खटकै ।
'जयसिंघ' वामें न सयानु न्यानु देखियतु
उमगी फिरति रस बस चित अटकै ।
पहिले सिखापन में बुरौ सौ लगतु पाछै
समुझै तें जानति कै बादि हम भटकै ॥ 415 ॥

अनुमान कौ लक्षण (दोहा)

पहिल एक की हौनि में दूजौ निहचै होइ ।
ताहि कहै अनुमानु यह अलंकार है सोइ ॥ 416 ॥

यथा

नेंक भएँ क्रपा जियँ रहतु भरोसौ यह
निहचे कै ताकौ धाम धनु सों भराइए ।
तनकु कुडीठि भएँ ईंठी तजि तियनि सों
देत अरि पीठि कहें भागि कहाँ जाइए ।
इहि भाँति 'जयसिंघ' कीरति बढ़ाई अति
सबही के मन भाई गीतनि में गाइए ।
रामचंद्र गुन तिहूँ लोक में बिदित जानि
आवति है चित निसि दिनु ताहि ध्याइए ॥ 417 ॥

परिकर अलंकार कौ लक्षण (दोहा)

बरननु जाकौ ताहि कै अनुकूल बिसेपनु होइ ।
परिकर तासों कहत है अलंकार सब कोइ ॥ 418 ॥

415-सयानु-स्यानु (जय.) ।
416-है-यह (जय.) ।

यथा

तेरेई बदन की लसति कांति इहि भाँति

कंचन की दीपति सु नाही पटतर है ।

केसरि न सरि जानी यह निज चित आनी

जाके जोरिबे कौ कोऊ नहीं भुव पर है ।

चंद दुति मंद तातें भावति है मोहन कौ

तन मन सुख दैनि काम पीर हर है ।

केतुकी कौ फूलु औरु चंपक कौ फीकौ लागै

'जयसिंघ' विधि हीं बनाई आपु कर है ॥ 419 ॥

व्याजोक्ति अलंकार कौ लक्षण (दोहा)

कहत बात जो फेरु लै तरह औरई होइ ।

व्याजोक्ति तासों कहै अलंकारु है सोइ ॥ 420 ॥

यथा

बागनि बागनि हौहू गई सखि तूँ नहि साथ हमारे चली है ।

फूलनि बीनति साँझ भई तहँ ढूढि फिरी सु मिली न अली है ।

मोहन जाइ कढ़े उतही अलि सोधत मानहु कंज कली है ।

हाँफति काँपति भागि चली 'जयसिंघ' करी नहीं भेंट भली है ॥ 421 ॥

परिसंख्या कौ लक्षण (दोहा)

समसरि दीबे कों नही देख्यौ कोऊ आनि ।

बूझै अनुबूझै कहै दोई भेद ए जानि ॥ 422 ॥

यासों नाही और है कहै अनकहै जान ।

परिसंख्यालंकार के चारि भेद ए मान ॥ 423 ॥

पहिलौ भेद

दीबे कों का जग दीननु दानु न काहू कौ गारि न मारि बताई ।

लीबे कों का है बड़ौ सब तें जसु काहू कों मालु न नारि पराई ।

पीबे कों का अधरामृतु बाल कौ नीच कौ नीरु न मादिकताई ।

कीबे कों का हरि की चरचा 'जयसिंघ' न लोभु न खूनु खुटाई ॥ 424 ॥

419- लागै-लगै (जोध.) ।

परिसंख्या कौ दूसरौ भेद

मारन जोगु गनावतु हौ अरि छोड़िवे कों अनरीति बताई ।
दीबे कों दानु है लीवे कों पुन्य अडंडनि डंडु लै रीति जताई ।
पालिबे जोगु है आपनें बोल सु जातें प्रजा नहिं जाति सताई ।
कीबे कों तौ 'जयसिंघ' यहै अब राम ही में निज प्रीति रताई ॥ 425 ॥

परिसंख्या कौ तीसरौ भेद

राम सदा सेवत हें भाँति भाँति निसु दिनु
दीबे काजै दानु उतसाहु रहै तितहीं ।
मारियतु दारिदु गरीबनि कौ सब विधि
अरिनि की चमूं चतुरंग उठै जितहीं ।
कीबे काजै न्याइ और कहिए हिसावी तहाँ
'जयसिंघ' दया निज दीननि कौ तितहीं ।
सुनत हें कान तान मनु लाइ निहचे कैं
भावत है हरि गुन कथा होति नितहीं ॥ 426 ॥

परिसंख्या कौ चौथौ भेद

दारिद हरत न हरत हें बिरानी नारि
दीननि कों दया नहीं खलनि कौ कीजिए ।
दौरें परस्वारथ कों और नहीं लालच कों
परिवाहिं जस की अजस कौ न छीजिए ।
हितुनि सों प्रीति नहीं रहति है अरिनि सों
'जयसिंघ' यहै रीति निसि दिनु लीजिए ।
राम नाम लेत ही अनेग सुख बाढ़ि जातु
दुखनि कौ नासु होतु घनै दिन जीजिए ॥ 427 ॥

कारणमाला कौ लक्षण (दोहा)

जो है कारन एक कौ उहै और कौ होइ ।
कारनमाला कहत है अलंकार यह सोइ ॥ 428 ॥

425- गनावतु-मनावतु (जोध.) । दीबे-दीवी (जोध.) । पुन्य-पुनि (जोध.) । अब-अम (जोध.) ।

यथा

राम लएँ नाम सब पातक नसत अरु

पातक नसें तें होइ धरम की चढ़ती ।

धरम के चढ़ें तहाँ दया भरिपूरि रहै

दया चढ़ें संपति औ' संचित की बढ़ती ।

संपति की बढ़ती तें होत हें अनेग सुख

सुख के बढ़े तें होइ दुखनि की कढ़ती ।

'जयसिंघ' प्रभु कौ प्रतापु इहि भाँति लख्यौ

जग की सुहाई भाई कीरति की रढ़ती ॥ 429 ॥

अन्योन्य अलंकार कौ लक्षण (दोहा)

कह्यौ जाइ त्योंनारि सों हेतु परसपर मानु ।

ताहि कहत अन्योन्य सो अलंकार यह जानु ॥ 430 ॥

यथा

बसन तें रूपु नीकौ लागतु है निजु करि

रूपवंत काजें सोहें बसन बनाइ कें ।

नेंन सोहें अंजन तें अंजनु सुहाइ नेंन

मेंन तें निकाई पावै जोबन बनाइ कै ।

जोबन तें कामकला भावति है मोहन कों

मोहन कों मोहत हें स्यामाजू सु भाइ कै ।

स्यामाजू के मोहिबे कों मोहन कहायौ नाउ

'जयसिंघ' कहत हें हरि गुन गाइ कै ॥ 431 ॥

उत्तर अलंकार कौ लक्षण (दोहा)

समुझि लेइ जहँ पूछिबौ उत्तर ही तें जानु ।

तासों उत्तर कहत है अलंकार परबान ॥ 432 ॥

429- धरम के चढ़ें-धरम चढै (जोध.) । संचित-संचति (जोध.) । दुखनि की कढ़ती-दुपनि कढती (जय.), दुप की कढती (जोध.) ।

432- जहँ -तहा (जोध.) । पूछिबौ-पूछियौ (जोध.) ।

यथा

आजु न आई है मेरेई धाम न जानौ कितै नित खेलनि जाती ।
संग सहेलिनि में अलबेली छकी रस प्रेम भई मदमाती ।
पूँछत कोऊ तहाँ 'जयसिंघ' सु फेरु करै करि आपु सुहाती ।
राधिका कौ मनु मोहन में सोई मेंन के चेंननि सेंननि राती ॥ 433 ॥

उत्तर के दूसरे भेद कौ लक्षण (दोहा)

पूछै तें जहँ होत है बहुत काज के ज्वाप ।
उत्तर कौ बिबि भेदु है बाचें जानौ आप ॥ 434 ॥

यथा

साथ सदा रहै को अपनें ? अति पुन्य निकाई जहाँ लगि कीजै ।
पाइबौ कौनु कहावतु हैं ? जस कौ बढ़िबौ' रु घनै दिन जीजैं ।
आनदु साँचौ गनौ ? 'जयसिंघ' सु पूतु सपूतु सिहाइ कै लीजै ।
राम की कौन मया ? निजु कै जब दान जु दीननि देखत दीजै ॥ 435 ॥

सूक्ष्म अलंकार कौ लक्षण (दोहा)

मिहीं अरथ, जौ कुछ लखै औरै देइ जनाइ ।
तासों सुक्षम कहत है अलंकार सो आइ ॥ 436 ॥

यथा

मोहन सों बदि औधि तहाँ निसि की गई राधिका आपनें धामै ।
चित्त में रोचु सकोचु कै लोक कों जात बन्यो नहि सोचु है स्यामै ।
ब्याकुल लाल कों देखि कै दूतिका कंजकली लै दिखावति बामै ।
दाउ बनाउ बन्यौ 'जयसिंघ' सु बाल मिली हँसि मूरति कामै ॥ 437 ॥

सार अलंकार कौ लक्षण (दोहा)

सरस सरस कहि सरसई काहू में निरधार ।
ताही सों सब कहत है अलंकार है सार ॥ 438 ॥

यथा

नागरि रतन एक जग में अपूरब है
नागरि में सो जु रूपवंत होइ अति हीं ।

434- ज्वाप-जाप (जोधं.) । बिबि-बिनि (जोध.) ।
437- मूरति-मूर (जोध.) ।

रूपवंत में सु नवजोबन निकाई जामें

जोबन में गुनवंत सील होइ मति हीं ।

सीलवंत ही में चतुराई अधिकाई जाकै

'जयसिंघ' भावति है चलै गजगति हीं ।

मोहन कौ रहति सुभाउ लियें निसु दिनु

लहनौ है ताकौ जोई बसति है पति हीं ॥ 439 ॥

असंगति अलंकार कौ लक्षण (दोहा)

कारनु अंत ही है कहूँ कारज और ही ठाँउ ।

ताहि असंगति कहत हें अलंकार कौ नाउ ॥ 440 ॥

यथा

भालुक्र औ' कपि घनै ल्यावत है गिरिवर

देखत निसाचर वे दबे जात अति हीं ।

करत बहस तहाँ सूर रूरे आपुस में

लंका माँझ सटपट भई इहि गति हीं ।

'जयसिंघ' राम कौ हुकमु नेकु होतु खल-

दलनि सघारै ऐसी सबही के मति हीं ।

सुनि सुनि रावन बिकल होत छिन छिन

धरकतु रहै महा मानतु बिपति हीं ॥ 441 ॥

समाधि अलंकार कौ लक्षण (दोहा)

कारन पाएँ कौनऊँ क़ारजु सहज ही होइ ।

तासों कहत समाधि यों अलंकार यह सोइ ॥ 442 ॥

यथा

लालन कों तलबेली लाइ उहि अलबेली

फिरि फिरि आइ हौही समुझाइ अति ही ।

पीतम की चोंप चाह कही महा दीन ह्वै कैं

त्यों त्यों सतराइ होइ जाइ और गति ही ।

बोल्यौ है पपीहा उहि समये में तेही ठौर

पीउ पीउ सुनै उपजी है रस रति ही ।

439- बसति-बस्त (जोध.) ।

441- होत-भयौ (जय.) ।

सहज ही भयौ है उपाउ यह 'जयसिंघ'

राधिका कै प्रीति भई मोहन सों अति ही ॥ 443 ॥

सम अलंकार कौ लक्षण (दोहा)

देखि तहाँ दो बस्तु कौ यह उह लाइक होइ ।

ताही सों सम कहत है अलंकार यह सोइ ॥ 444 ॥

यथा

जोरे तें नाही जुरें मृग के द्रग खंजन कंज तें लागे सुहाए ।

दामिनि सी दमकै दुति देह की चोंप लुभाइ कै नेंन लगाए ।

राधिका की छबि पावै नही रति काम तें मोहन नेंननि भाए ।

जोरी बनी 'जयसिंघ' मनोहर देखि बिचारि कै गीतन गाए ॥ 445 ॥

असम अलंकार *

प्रथम भेद कौ लक्षण (दोहा)

अधिक औरई तरह तें मिलिबे लाइक नाहि ।

भेदु एकु यह असम कौ जानि लेउ तिहि माहि ॥ 446 ॥

यथा

चूनरी रंग सुरंग कहा' रु कहा यह कामरि आनि दिखाई ।

कंचन से तन राधे कहा' रु कहा तुम कारे हौ धूत कन्हाई ।

मोतिन माल कहा 'जयसिंघ' कहा यह गुंजनि सोही निकाई ।

फूलनि सेज गड़ै जिनकै तिन्है भूमि की सेज में कैसें सुहाई ॥ 447 ॥

असम के दूसरे भेद कौ लक्षण (दोहा)

आपु सुहाती होइ नहि होइ अनैसी आइ ।

भेदु असम कौ दूसरौ अलंकार इहि भाइ ॥ 448 ॥

443- चाह-नाह (जोध.) ।

444- सम-सब (जोध.) ।

*- हस्तलेखों में केवल एकशीर्षक 'असम कौ लछन' है । काव्यप्रकाशकार के 'विपम' को जयसिंह ने 'असम' कहा है ।

447- प्रथम पंक्ति का 'कहा' रु' (जोध.) में छूटा है । से तन-(जोध.) में दो बार लिख गया है ।

यथा

रावन सीता हरी बुधि मंद सु राम महातमु जान्यौ न नीकै ।
बाँदर रीछनि कौ लखि कै चकवाइ रहे भये आनन फीकै ।
जानि कै ल्याए ते आनँदकंद बढ़्यौ दुखु दंद मिटै सग जी कै ।
नासु भयौ सिगरे कुल कौ इहि मूढ़ कियौ कहा कारन ती कै ॥ 449 ॥

असम के तीसरे भेद कौ लक्षण (दोहा)

कारज बिपै जु हेत तें गुन कै क्रिया बिरोधु ।
और भेद द्वै असम के जाने ह्वैहै बोधु ॥ 450 ॥

यथा

स्याम घन लखियत होत ताते हरे बन
तिनही में भाँति भाँति फूल दरसत है ।
कबहुँक दामिनी दिखावै कांति कंचन की
[क] वहुँक वोरभि कै जोर बरसत है ।
स्याम तन मोहन कनक तन राधिका तें
भए अनुराग लाल छबि सरसत है ।
'जयसिंघ' तन मन वारत है हेरि फेरि
देखिबौई कीजै सोभा देखि तरसत है ॥ 451 ॥

असम के चौथे भेद कौ उदाहरण

भेंटत हीं मन मोदु करै बिछुरें तन ताप बढ़ावै घनेरे ।
प्यावति तूँ अधरामृतु चाह सों बान लौ लागत हें द्रग तेरे ।
तोहीं तें मोहत हें 'जयसिंघ' कहूँ नहि और तिया तन हेरे ।
मोहन कों सुखु दै दुखु देति है लेति रिझाइ फिरै नहि फेरे ॥ 452 ॥

449- नीकै-नीकौ (जोध.) । फीकै-फीकौ (जोध.) । जी कै-जी कौ (जोध.) । नासु-नामु (जोध.) । ती कै-ती कौ (जोध.) ।

451- घन-घटा (जोध.) । बन-बिन (जोध.) ।

452- घनेरे-घणेरे (जय.) ।

असम कौ पाँचवौ भेद

पूरन है तीन्यौ लोक भाँति भाँति सुर नर

नागनि कौ निसु दिन निहचै रहतु है ।

उदधि तें गहिराई मेर तें है गरबाई

आठौ जाम जाकी बिधि अस्तुति करतु है ।

'जयसिंघ' जिह की बड़ाई देखी सब बिधि

जेतीय विचारी तेती उपमा लहतु है ।

राधा तिन मोहन कौ पूतर्यौ छिपाइ लेइ

देखन न पावै सौति कोतिकु सौहतु है ॥ 453 ॥

अधिक अलंकार कौ लक्षण (दोहा)

जामें होइ सु तनकु है उहु गुन तें बढ़ि जाइ ।

अलंकार सो अधिक है बरनौ तिहे बनाइ ॥ 454 ॥

यथा

दिननि की थोरी गोरी भोरी है किसोरी बैस

मेरे जान सबही तें बड़ी यह देखिए ।

सील चतुराई औ' निकाई जामें अगनित

पाई है सुहाई भाई पिय कौ विसेपिए ।

और घनी तियनि में प्यारी अति मोहन कै

जातें गुन अधिकारी कोऊवै न लेखिए ।

'जयसिंघ' जाकौ रूपु निसि दिनु जोवत है

लालन के लोइन अघात नही पेखिए ॥ 455 ॥

अधिक के दूसरे भेद कौ लक्षण (दोहा)

माफि[क] ताकै बस्तु है ताही में न समाइ ।

अलंकार यह अधिक कौ भेदु दूसरौ आइ ॥ 456 ॥

453- मेर तें-मे ते (जोध.) । न-(जोध.) में छूटा है ।

455- गोरी भोरी-भोरी गोरी (जोध.) ।

456- ताही-नाही (सर्वत्र) ।

यथा

तीन्यौ लोक जामें ऐसौ हरि कौ अपार तनु
जाकौ बरनत मति गति रहै थकि कै ।
सेस औ' गनेस जो बड़ाई कर्‌यौ चाहत है
कहत न बनै कछू बादि रहै बकि कै ।
राधिका छबीली अदभुत गतिं मोहिनी है
'जयसिंघ' लालनु सिहात जाहि तकि कै
रूपु ऐसौ बाढ्यौ न समात उर मोहन कै
कौतिक कौ लखि सब रहि जाइ जकि कै ॥ 457 ॥

प्रत्यनीक कौ लक्षण (दोहा)

जबरदस्त पै नहि चलै पै याके जस काज ।
संसर्गी की हानि कै प्रत्यनीक यह साज ॥ 458 ॥

यथा

दूरि करे दुख हितकारनि के रामचंद्र
अति हीं बिकल कहूँ पावत न ठौर है ।
ढूँढत फिरत आपु बास काजै धाम धाम
रहन न पावै निज बाढ़ी मन भौर है ।
'जयसिंघ' जाइ टोहि लए अरि उनही के
तिन सों लपटि आपु काज आपु गौर है ।
या बिधि कलेस रघुनाथजू सों दाउ लेत
बैरनि के तन माँह पारें दाह रौर है ॥ 459 ॥

मीलित कौ लक्षण (हरिगीतिका)

निपट कै जौ बरनियें चीन्हौ बराबरि देखि कै ।
क्रतमु होइ सुभाइकौ कै ताहि द्वै बिधि लेखि कै ।

457-कहत न बनै-कहत बनै (जय.) । बादि-बात (जय.) ।
458-संसर्गी-संसर्गो (जोध.) ।
459-कहूँ-हू (जोध.) ।

पुनि छपहि तामें दूसरे ते एकु तिह कौ जानियें ।

अलंकार जु कह्यौ मीलित ताहि इहि बिधि मानियें ॥ 460 ॥

यथा

संग सखानि कै खेलत लाल ह्वां राधिका आनि कै दीनी दिखाई ।

नेंन मिलें अति चाह बढ़ी प्रगटी तहँ आनि कै कामकलाई ।

मोहन देह कटीली भई 'जयसिंघ' न जाति है क्योंहूँ गनाई ।

सीरी बयारि चलै तिहि ठौर सु जाड़े तें औरन काहूँ गनाई ॥ 461 ॥

एकाक्ली अलंकार कौ लक्षण (दोहा)

आरोपै कै औथऐ पहिल और तें जाहि ।

अलंकार एकावली इहि बिधि बरनत ताहि ॥ 462 ॥

यथा

बन्यौ ताकौ कहिए जु अंग अंग है निकाई

अंग तब नीकौ जो बदनु बन्यौ अति ही ।

बदनु सु नीकौ जाकै हरि गुन गाइयतु

हरि गुन सोई जातें सुद्ध होइ मति ही ।

देसु सो न कहियतु जामै न रहत भूप

भूप सो न जामै कछू दान की न गति ही ।

दानु सो न कहियतु जातें न बढ़तु जसु

'जयसिंघ' सो न जसु जो न होइ सति ही ॥ 463 ॥

स्मरण अलंकार कौ लक्षण (दोहा)

आवति है सुधि आन की पटतर निहचै देखि ।

तासों समरन कहत है अलंकार यह लेखि ॥ 464 ॥

460-कै ताहि-कौ ताहि (जोध.) ।

461-है-(जोध.) में छूटा है ।

463-गति ही-गति है (जोध.) । जातें न बढ़तु-जातै बढतु (जोध.) ।

यथा

आली चली आई तहाँ देखे कान्ह रस भरे
घनी चोंप चाह यातें रहे ललचाइ कै ।
मोहन के मन तें न टरति है उह बात
जोई राति साथ भई राखै जै लुभाइ कै ।
उपबन कूजत बताई तव कोकिल कों
पिक बैनी सुधि आई वैसेई सुभाइ कै ।
'जयसिंघ' पीतमै सुहानी घात भाँति भाँति
चित चाही सुधि द्वाई तवहीं बनाइ कै ॥ 465 ॥

भ्रांतिमान कौ लक्षण (दोहा)

समसर देखत हीं तहाँ भरमु अधिक वढ़ि जाइ ।
भ्रांतिमान तासों कहें अलंकार समुझाइ ॥ 466 ॥

यथा

कीरति राम की तीनिहूँ लोक में दीपतिवंत महा पसरी है ।
जानै मरीचिका लौ तिह कौ नर जानें म्रगौं सलिता जु भरी है ।
काहू कों लागति जौन्ह सी देखत छूटत ना छवि एक घरी है ।
हीरनि रास कै मोतिनि पुंज सु यों 'जयसिंघ' धरा पसरी है ॥ 467 ॥

प्रतीप अलंकार कौ लक्षण (दोहा)

जानि परे जिहिं ठौर हीं निंदत सों उपमान ।
अलंकार सु प्रतीप है जानौ ताहि प्रमान ॥ 468 ॥

यथा

आननु कहत जाकौ चंद सौ प्रगट अरु
नेंननि कौ कमल की देत पटतर है ।
नासिका कों कीर चोंच बैन कहै पिक कैसे
बिंबीफल विद्रुम अधर समसर है ।

465-मन तें-(जोध.) में छूटा है ।
466-भरमु-भ्रमु (जोध.) ।
467-लौ-का लौ (जय.) ।

भुजा कों म्रनाल कहि श्रीफल समान कुच
'जयसिंघ' जानु कौ कदलि तरवर है ।
अचिरजु राधा कौ ए उपमा बतावत है
मोहन कौ मोहि जिहिं किए आपु कर है ॥ 469 ॥

सामान्य अलंकार कौ लक्षण (दोहा)

समसर सों मिलि जातु है गुन कै कारन पाइ ।
अलंकार सामान्य है ताकों दियौ बताइ ॥ 470 ॥

यथा

छूटी लटै उर आइ रही धुरवा सी लसै छबि यों दरसी है ।
राजति है 'जयसिंघ' महा दुति दाँतनि दामिनि लौ सरसी है ।
संग हीं जाति चली घनस्याम कै देखत हीं मति यों तरसी है ।
न्यारे से जानि परे नहि काहू कौ ऐसी निकाई तहाँ परसी है ॥ 471 ॥

विशेष अलंकार कौ लक्षण (दोहा)

बिन अधार थिति बरनियें बरननु नीकौ होइ ।
तासों कहत बिसेप है अलंकार यह सोइ ॥ 472 ॥

यथा

राम पधारे तहाँ बयकुंठ सु गावतु है जगु कीरति नीकै ।
काजु कर्‌यौ जिन देवनि कौ अरु रापस मारे हें कारन सी कै ।
ध्यावत है तिहूँ लोक में ताहि बढ़ै 'जयसिंघ' सु आनद ही कै ।
सेवक के मनवंछित होत है बाँधि गए सबकी सब लीकै ॥ 473 ॥

तद्‌गुण अलंकार कौ लक्षण (दोहा)

काहू के संबंध तें गुन औरै कहि जाइ ।
अलंकार तद्‌गुन यहै कहौ ग्रंथ मतु पाइ ॥ 474 ॥

469-चंद सौ-(जोध.) में दो बार लिखा है । नासिका-नामिका (जोध.) । बिद्रुम-विद्रम (जोध.) । श्रीफल-सीफल (जोध.) ।
471-छूटी-छूटै (जोध.) । कै-कौ (जोध.) ।
473-हांत है-है तहाँ (जोध.) ।

यथा

सुभट समूह चले राम कौ हुकमु पाइ
नदी नद सूखि तहाँ उड़ी धूरि पंक की ।
जुद्ध कौ त्रिसुद्ध क्रुद्ध भयौ दसकंठु आयौ
हय गय साजि गाजि लियें फौज लंक की ।
होत करवालनि के वारपार देखियतु
महामारु मच्यौ काहू जिय में न संक की ।
लोहू की दलेलनि सों समुद भयौ है लाल
'जयसिंघ' लीन्ही पुरी घेरि कै कनंक की ॥ 475 ॥

अतद्गुण अलंकार कौ लक्षण (दोहा)

भएँ और संबंध तें बरननु चहिए औरु ।
औरु न होइ सु अतद्गुन अलंकार तिहि ठौरु ॥ 476 ॥

यथा

तीन्यौ लोक जेर किए जोराबरी जानै जगु
साहिब भयौ है आपु जैसी मन धरी है ।
दिल की दलेल और दल की दलेल महा
उमग्यौ रहतु सदा नही सूझि परी है ।
'जयंसिंघ' रामचंद्र कोपि धनु बानु लियौ
मार्‌यौ दसमुख माँझ यों अकथ्थ करी है ।
रुधिर के चलै तहीं कारौ ह्वै बदनु गयौ
उदधि में कीच बीच लंक संक भरी है ॥ 477 ॥

व्याघात अलंकार कौ लक्षण (दोहा)

क्रिया जौन जाकी कही सो तहँ उलटी होइ ।
अलंकार व्याघात है जानि लेउ यह सोइ ॥ 478 ॥

475-कनंक-कनिक (जय.), कन (जोध.) ।
477-जेर किए जोराबरी-जोर करे जोरबारी (जोध.) । के-(जोध.) में छूटा है ।
478-क्रिया-क्रीया (जोध.) ।

यथा

मोहन बिदेस गए राधिकै अधिक पीर

अतन की तन काजै तावति है आइ कै ।

आली उपचारनि कों धाइ जाइ ल्यावति है

चित में विचारु करि नीकेई सुभाइ कै ।

चंदनु गुलाबनीरु अंबुज लगावती है

तपति बढ़ति अति महा दुखुदाइ कै ।

'जयसिंघ' लालन के अंग संग सुखु पावै

मनु नही बहरतु रही बहराइ कै ॥ 479 ॥

संसृष्टि कौ लक्षण (दोहा)

मुख्य बताए एक ही अलंकार कैऊक ।

अलंकार संसृष्टि सो सुनत हीं लगै मलूक ॥ 480 ॥

यथा

बगसत राम कें चकित सुर नर होत

भादौ हू की बरसान होति समसरि है ।

'जयसिंघ' देखत बढ़ावै मन अचिरजु

तीन्यौ लोक मध्य ही बराबरि कौ करिहै ।

छूटत हीं बान आनि फूटत है अरि उर

नागनि के सीसनि की पांई छबि भरि है ।

भागत हीं घाट बाट पावत न खल दल

अरिनि की चमू तहाँ वोरे लगि गरि है ॥ 481 ॥

संकर अलंकार कौ लक्षण (दोहा)

जहाँ और के अंग कौ अलंकार है और ।

अलंकार संकर कह्यौ यों जताइ तिहि ठौर ॥ 482 ॥

479-लालन-लाल (जोध.) ।

480-संसृष्टि-संसृ (जोध.) ।

481-नागनि के-नागरि कै (जोध.) ।

482-यों-सो (जोध.) ।

यथा

रावन नारि भगी भयभीत ह्वै मंदिर छोड़ि कै जंगल लीनै ।
अंबर फाटत भूपन जोति कढ़ै तें बढ़ी सु प्रकासत कीनै ।
चोरनि दौर कै लूटि लई 'जयसिंघ' तहाँ तें भई अति दीनै ।
कंचनु अंग के रंग गयौ बचि और सबै गहनै उन छीनै ॥ 483 ॥

यथा

तेरे नेंन देखे एँन जल में दुरे है मीन
समता कौ पावै नही रहे है लजाइ कै ।
लखि कै कुरंगु पै प्रसंग छोड़ि संग ही कौ
नगर दए है तजि सेए बन धाइ कै ।
खंजन के गंजन ए पिय मनरंजन है
'जयसिंघ' निरखे है मोहनी सुभाइ कै ।
कान्ह के है सुखदाई मनु बस करि पायौ
जैसें फूल भौर काजै राखत लुभाइ कै ॥ 484 ॥

यथा

देखत बनति पै कहत न बनति कैहू
ऐसी छबि लखी निज मोहन कौ भाई है ।
मीन औ' कमल और खंजन के गंज [न] है
अगम में गम करै अति ही निकाई है ।
'जयसिंघ' इन सम ऐई, सब लघु आइ
चपलाई चतुराई जैसी गुन गाई है ।
मेंलबान काजै नेंन तेरे, नाउ कहै [कवि]
सावक बिसेपें मृग, सोभा अधिकाई है ॥ 485 ॥

(दोहा)

अलंकार बरननु कर्‌यौ काव्यप्रकास जु रीति ।
निजु कै जबहीं समुझि हौ जबै होइ या में प्रीति ॥ 486 ॥

483- लीनै-लीन्है (जय.) । गयौ-यौ (जोध.) ।
485- यह छन्द (जोध.) में नहीं है ।
486- यामें-जिय मै (जोध.) ।

अथ चित्र अलंकार*–वर्णन

सर्वतोमुख

जब पानि वहै धनु मानु कही सुनि प्रात सही हम जानि सबै ।
अब आनि बहै मनु ग्यानु वही गुनि घात लही क्रम मानि अवै ।
कब बानि गहै तन ठानु तही घुनि बात कही सम स्यानि तबै ।
सब कानि रहै घन दानु दही पुनि पात मही कम छानि कबै ॥ 487 ॥

हार बंध, त्रिपदी, कपाट बंध, अश्वगति बंध, मंत्रीगति बंध, कमल बंध, धनुषबंध

जानु मानु पनु दानु दिनु दिनु दिनु मनु तनु चैनु ॥
सुनु गुनु रनु धनु बानु जनु कानु आनु गुनु बैनु ॥ 488 ॥

चरणगुप्त**

नाम करम जपि रस लहउ हरि कह चित मह मान ।
जब तब सब अब यह गुनहु लहि तन मन सम ग्यान ॥ 489 ॥
हरि हरि निसि दिनु कहतु रहु पलु पलु छिनु छिनु जान ।
सब तजि यह मन आनि नर इन सम नाहिय आन ॥ 490 ॥

चक्र बंध

बनिता ठनि बनि बसन बनि सो जब बसि मोहैब ।
कहती नित बातै नई रोचु बढ़ै सोहैब ॥ 491 ॥

पर्वत बंध ***

सारस देखे तहाँ पल आरस भार लसे सब के करसा ।
खेद भयौ निरखै यह रे बलि यौ मन कौ नर कौ तरसा ।
सक्र कहा सम कौ 'जयसिंघ' सु कान्ह रे तो मुख के दरसा ।
सारस खेल लखे बस रेन न रे सब खेल लखे सरसा ॥ 492 ॥

हिंदवी पारसी के अस्लेष कौ दोहा

जानी जानी चंद मन सबतो दानी आइ ।
सब दानी तो दान मन यों तन आब बजाइ ॥ 493 ॥

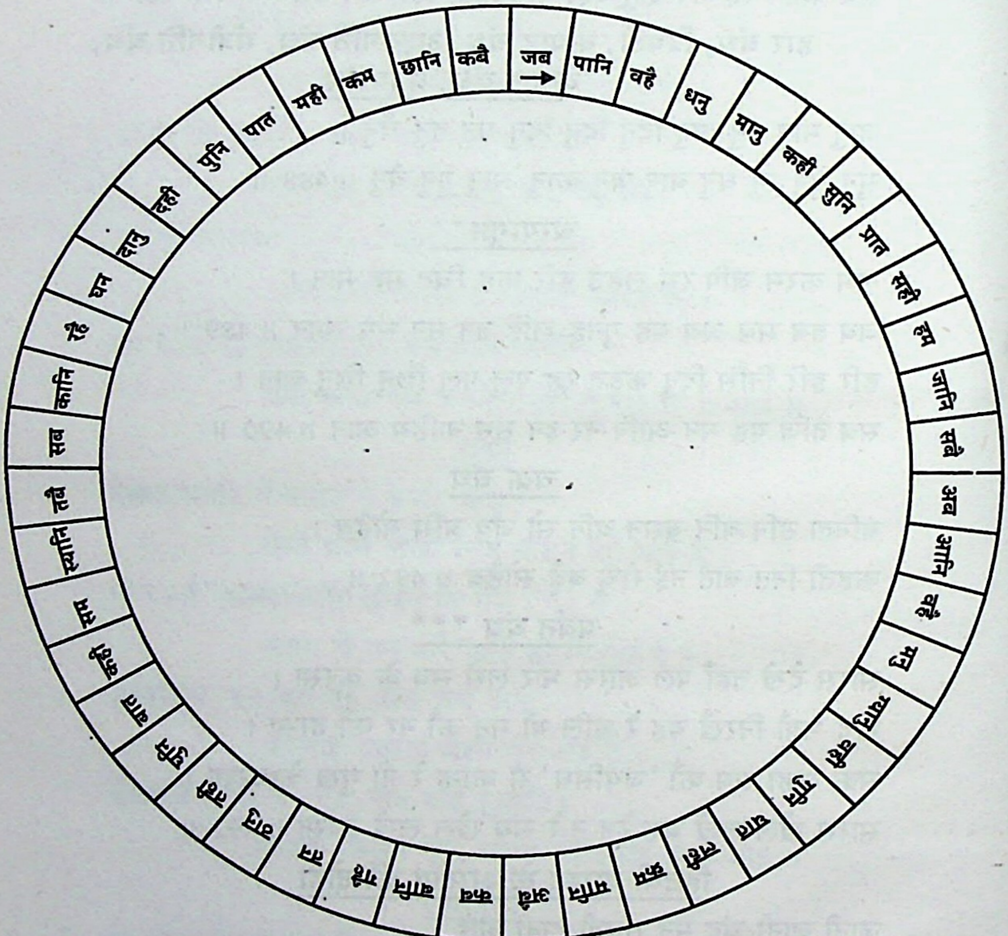
---

*- हस्तलिखित प्रतियों में ये केवल चित्र-रूप में हैं । छन्द-रूप में अलग से लिखित नहीं हैं । हमने इन्हें छन्द-रूप में भी दे दिया है । इनसे सम्बद्ध छन्दों का परिगणन भी हस्तलेखों में नहीं हुआ । हमने इन्हें गणना में सम्मिलित कर छन्दसंख्या दे दी है ।

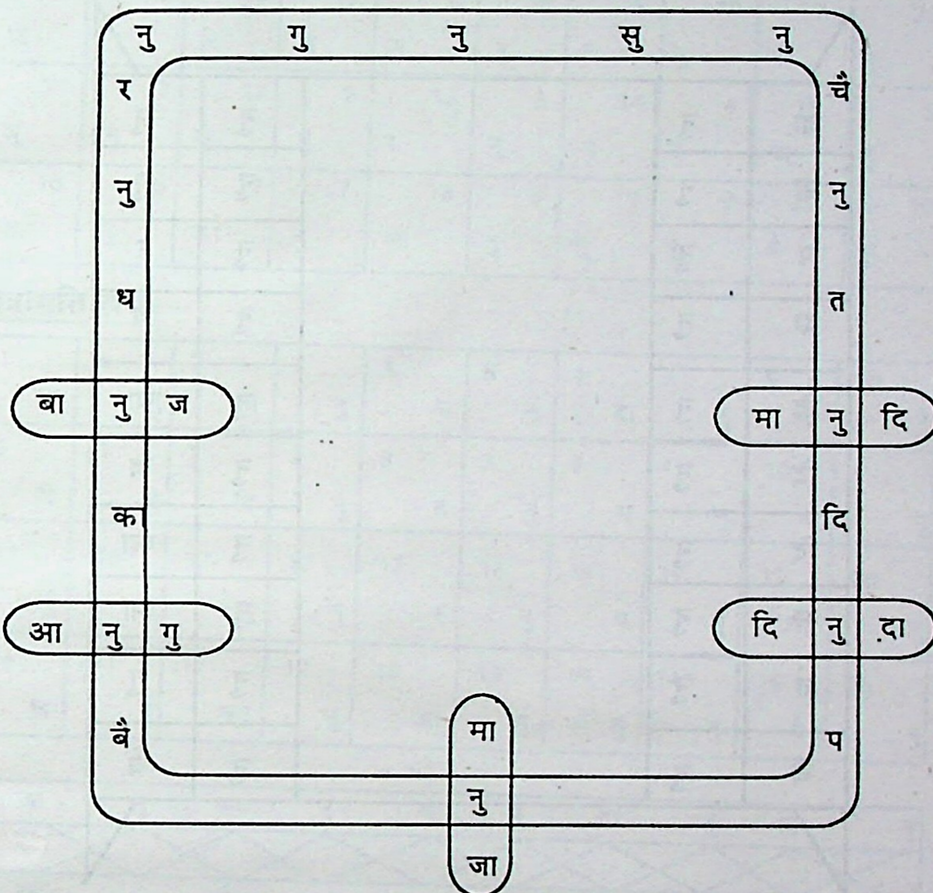
**- हस्तलिखित प्रतियों में शीर्षक नहीं है ।

***- हस्तलेखों में 'छत्र बंधु' शीर्षक दिया है जब कि चित्र-रूप पर्वत बंध का है ।

सर्वतोमुख


जब
पानि
वहै
धनु
मानु
कही
सुनि
प्रात
भली
हम
जानि
सबै
अब
आनि
वहै
प्रभु
कवै
छानि
कम
मही
पात
पुनि
तहीं
दानु
घन
रहै
कानि
सब
तबै
त्यागि

हार बंध*



त्रिपदी

जा	मा	प	दा	दि	दि	दि	म	त	चै
नु	नु	नु	नु	नु	नु	नु	नु	नु	नु
सु	गु	र	ध	बा	ज	का	आ	गु	वै

*- हस्तलिखित प्रतियों में दिए गए चित्र में हार का गुच्छ या लटकन ऊपर की ओर है। औचित्य की दृष्टि से हमने इसे नीचे की ओर कर दिया है। अर्थात् चित्र को उलट दिया है।

कपाट बंध

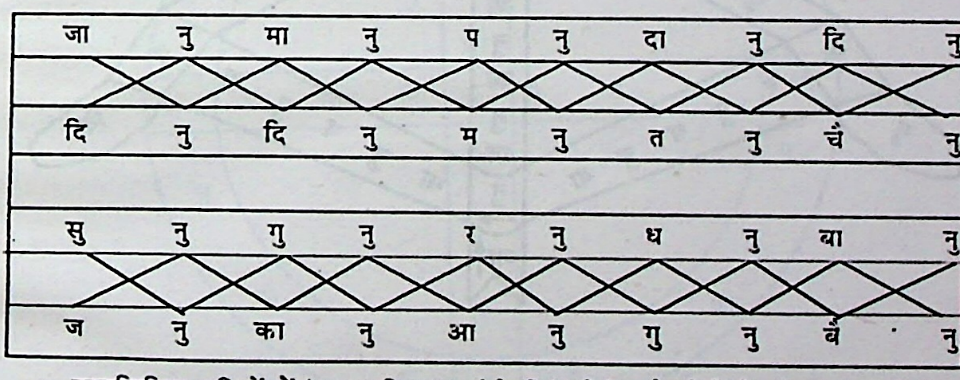
जा	नु		नु	सु
मा	नु		नु	गु
प	नु		नु	र
दा	नु		नु	ध
दि	नु		नु	बा
दि	नु		नु	ज
दि	नु		नु	का
म	नु		नु	आ
त	नु		नु	गु
चै	नु		नु	बँ

अश्वगति बंध–

1 जा	11 नु	2 मा	12 नु	3 प	13 नु	4 दा	14 नु	5 दि	15 नु
6 दि	16 नु	7 दि	17 नु	8 म	18 नु	9 त	19 नु	10 चैं	20 नु
11 सु	1 नु	12 गु	2 नु	13 र	3 नु	14 ध	4 नु	15 बा	5 नु
16 ज	6 नु	17 का	7 नु	18 आ	8 नु	19 गु	9 नु	20 बैं	10 नु

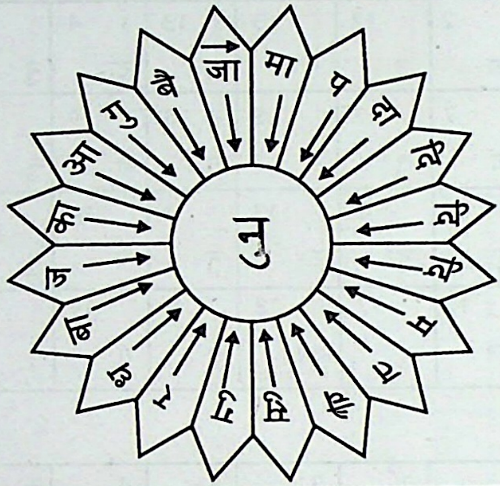
मंत्रीगति बंध+–

1 जा	6 नु	2 मा	7 नु	3 प	8 नु	4 दा	9 नु	5 दि	10 नु
6 दि	1 नु	7 दि	2 नु	8 त	3 नु	9 म	4 नु	10 चैं	5 नु
11 सु	16 नु	12 गु	17 नु	13 र	18 नु	14 ध	19 नु	15 बा	20 नु
16 ज	11 नु	17 का	12 नु	18 आ	13 नु	19 गु	14 नु	20 बैं	15 नु

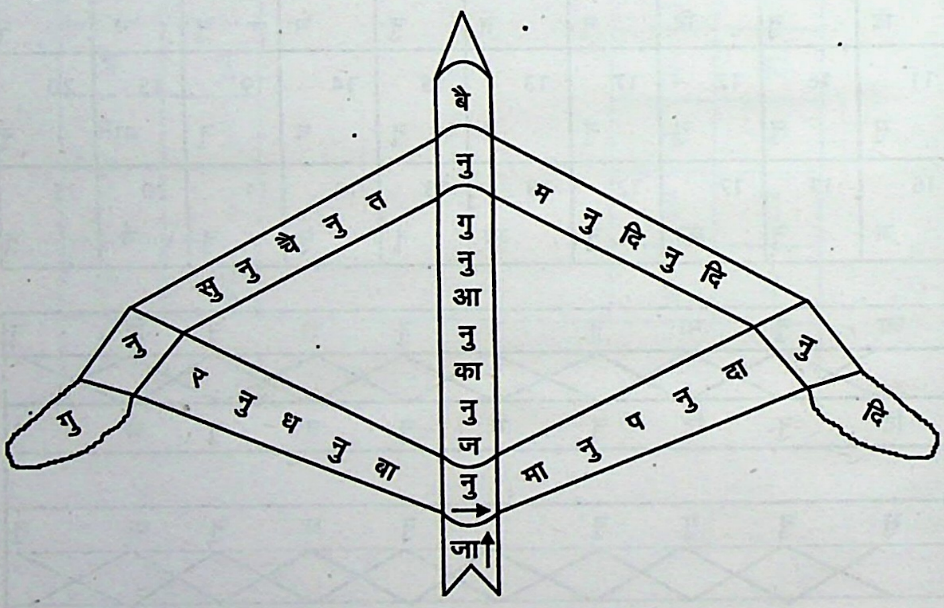


\+ हस्तलिखित प्रतियों में 'अश्वगति तथा मंत्रीगति' शीर्षक से दोनों के लिए एक ही चित्र दिया गया है । हमने स्पष्टीकरण हेतु अलग-अलग शीर्षक देकर वही चित्र दो बार दिया है और अंक-संकेत के द्वारा उनके पढ़ने की विधि निर्देशित की है । मंत्रीगति बंध के अन्तर्गत दूसरा चित्र रेखाओं के द्वारा उसे और अधिक स्पष्ट करने के लिए हमने दिया है ।

कमल बंध



धनुष बंध

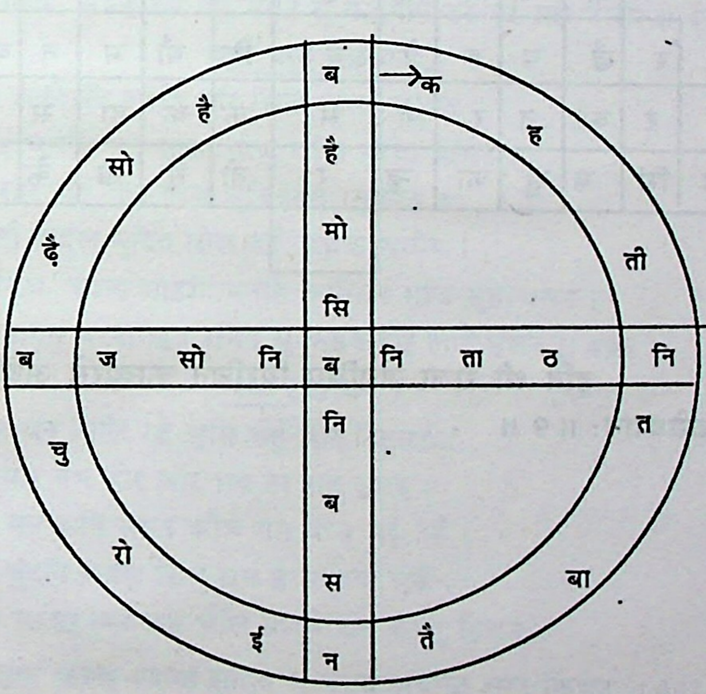


*हस्तलिखित प्रतियों में धनुष-वाण का लक्ष्य अर्थात् तीर का फल नीचे की ओर है। हमने परम्परानुसार उसे ऊपर की ओर कर दिया है अर्थात् चित्र को उलट दिया है।

चरणगुप्त

	5				4				3	
	ना	म	क	र	म	ज	पि	र	स	
	ल	ह	उ	ह	रि	क	ह	चि	त	
	म	ह	मा	नु	ज	ब	त	ब	स	
	ब	अ	ब	य	ह	गु	न	हु	ल	
6	हि	त	न	म	न 9	स	म	ग्या	न	2
	ह	रि	ह	रि	नि	सि	दि	नु	क	
	ह	तु	र	हु	प	लु	प	लु	छि	
	नु	छि	नु	जा	न	स	ब	त	जि	
7	य	ह	म	न	आ	नि	न	र	इ	1
					8					

चक्र बंध–



पर्वत बंध–

							सा							
							र							
							स							
						दे	खे	त						
					हाँ	प	ल	आ	र					
				स	भा	र	ल	से	स	ब				
			के	क	र	सा	खे	द	भ	यो	नि			
		र	खै	य	ह	रे	ब	लि	यौं	म	न	कौ		
	न	र	कौ	त	र	सा	स	क्र	क	हा	स	म	कौ	
ज	य	सिं	घ	सु	का	न्ह	रे	तो	मु	ख	के	द	र	सा
							न							

इति श्री राजा जयसिंघ बिरचिते काव्यरसे अर्थालंकार वर्ननं नाम नवमोध्याय: ॥ 9 ॥

अथ ऋतु–वर्णन

वसंत ऋतु (छप्पय)

फूलत सरवर कंज रंज मन सौरभु आवतु ।
बन उपबन सुभ कुसम लखै छबि अदभुत पावतु ।
केसरि अगरु गुलाब बाल पिचकारनि साजहि ।
रचि सोरह सिंगार फागु करि तजहि सु लाजहि ।
गुन गान बाद रंगनि सहित दिन दिन अति सोभा गहइ ।
मोहन रसाल 'जयसिंघ' तहँ सु रितु बसंत सब सुख लहइ ॥ 494 ॥

ग्रीष्म ऋतु (छप्पय)

चंदनु गारि गुलाव घोरि घनसारु लगावहि ।
कमल कमलकर लियें पवन तन सीतल भावहि ।
उरई के रचि धाम छिरकि तहँ सेज बनावहि ।
ग्रीपम की अति लपट नेकु जहँ निकट न आवहि ।
दंपति जु सुख्ख दिन दिन लहइ हरपि निरखि सोभा दरसि ।
'जयसिंघ' कान्ह रस महँ मगन सु कामिनि उर उर सहँ परसि ॥ 495 ॥

वर्षा ऋतु (छप्पय)

पवन झकोरनि उठति धूरि छिति अंमरु छायउ ।
उमड़ि घुमड़ि घन सघन वीजु लखि धुरवा भायउ ।
मोर सोर चहुँ वोर गरज धुनिश्रवन सुहायेय ।
झिल्ली दादुल मुदित बोल तहँ चातक भायेय ।
'जयसिंघ' कान्ह मोहतिं मनहि कामिनि सजि सूहे बसन ।
इमि आगम बरपा ऋतु रमित सु कहकहाइ लागे हसन ॥ 496 ॥

यथा (छप्पय)

गिरवर घन मिलि रहे झूमि चहुँ वोर निहारइ ।
गरज घोर नभ वोर जोर भय उर मह डारइ ।
देखत बन अति सघन कीच मग बीच भई तहँ ।
दीरघ बुंदनि बरसि सिंधु सम है सलिता जहँ ।
सीतल सरोस लकवाह चलि बिछुरें तन कंपतु हियउ ।
'जयसिंघ' कान्ह स्यामा सहित सु बरपा अदभुत सुखु कियउ ॥ 497 ॥

495–नेकु–नेहु (जोध.) ।
496–दादुल–दादुर (जोध.) । मुदित–मुदत (जोध.) । सूहे–सुहे (सर्वत्र) ।

शरद् ऋतु (छप्पय)

निर्मल चंदु अकासु और जलु निर्मल देखहि ।

तहाँ जुन्हाई दिपति अन्हाई समसरि लेखहि ।

सारी सेत सुधारि पहिरि कुसमनि आंभूपनि ।

चंदन कों तन लाइ पियें तिय अधर पयूपनि ।

कैरव कुसंम्ह सुंदर लसत कंजकलिनि छबि होति अति ।

'जयसिंघ' कान्ह रचि रासु तहँ सरद सुहाई होति रति ॥ 498 ॥

हेमंत ऋतु (छप्पय)

प्यारी पीउ सुभ रीति चीति मन प्रीति बिचारइ ।

अदभुत सोभा दरसि परसपर रूप निहारइ ।

साल रजाइनि वोढ़ि ढाँकि तन सीतु निवारहि ।

दंपति रस महँ मगन साजि आभरन सुधारहि ।

नहि पवन गंमि जिहि ठौर कहुँ तिन धामनि मंगल लहइ ।

'जयसिंघ' कान्ह राधा सहित सु हेमंत महँ सुख सों रहइ ॥ 499 ॥

शिशिर ऋतु (छप्पय)

सीतु रह्यउ भरिपूरि औरु नहि दूजौ दीसइ ।

वोस परति चहुँ वोर रहइ दबि घामु दिनीसइ ।

दीरघ निसि अति होइ हिम सु तन कंपु जनावइ ।

अंबर तूल भराइ वोढ़ि दंपति सुख पावइ ।

निर्धूम अगिनि तिहि बीच धरि अगरु डारि सौरभ लहइ ।

'जयसिंघ' कान्ह राधा निकट सु सिसिरि माँह इहि बिधि रहइ ॥ 500 ॥

498- कंजकलिनि-कंजकलि (जय.) ।

499- रूप (जोध.) में दो बार लिखा है ।

500- वोस परति-वोपरति (जय.) । सु सिसिरि-सुसिरि (जय.) ।

अथ राग विचार

(दोहा)

महत्तत्व पहिलें भयौ पीछै उपज्यौ नादु ।
आपुनु तें आपुनु प्रगट लैन बिचारौ स्वादु ॥ 501 ॥
चेतनता सब ठौर भरि यहै समुझि जियँ लेउ ।
आपुनु कौ आपुनु लखौ नाद माँझ चितु देउ ॥ 502 ॥
ब्रह्म यहै माया यहै सो यह निजु कै आइ ।
बहुत भाँति भयौ आपु तें तिह के जानौ भाइ ॥ 503 ॥
करी रीति तहँ राग क़ी छह भाँतिनि समुझाइ ।
क्यों 'जयसिंघ' सु-जानई महा अगम यह आइ ॥ 504 ॥

अथ सप्त स्वर–वर्णन

षडज रिपभ गंधार है मध्यम पंचम जानि ।
धैवत और निपाद है सातौ सुरनि बखानि ॥ 505 ॥
वोडव कहिए पंच सुर पाडव पट सुर आइ ।
संपूरन है सात सुर ताके जानौ भाइ ॥ 506 ॥
अ क च ट त प ज स वर्ग है क्रम तें आठौ जानि ।
सोम आदि ग्रह देवता राहु अंत निजु मानि ॥ 507 ॥
कीरति होइ अबर्ग तें और आउ अधिकाइ ।
कबरग टबरग तबरगौ कीरति देत बढ़ाइ ॥ 508 ॥
अपजस होइ चवर्ग तें पबर्ग तें मति मंद ।
जबरग भय उपजावई सबरग सुन्य सदंद ॥ 509 ॥
आदि नकार सु धनु हरै जस हर आदि हकार ।
गीत आदि दीजै न ए जसु धनु हरतु मकार ॥ 510 ॥

501- महत्तत्व-महातत्त (जोध.) ।
506- वोडव-वोडस (जोध.) ।
508- अबर्ग-अगर्व (सर्वत्र) ।
509- चबर्ग-चर्ब (जोध.) । पबर्ग-पर्बग (जोध.) । जबरग-जवर (जोध.) ।

पीढ़ाबंध दकार दै दै अंतरा भकार ।
भोगहि रचै बकार कौ लछमी फल दातार ॥ 511 ॥
बिप्र बर्न सु अबर्ग है और कबर्गहि लेखि ।
चबर्ग टबर्ग कौ तहाँ निहचै छत्रिय देखि ॥ 512 ॥
तबरग पबरग बैस्य है सुद्र जबर्ग सबर्ग ।
कर्‌यौ यहै निरधारु है गीतादिक की सर्ग ॥ 513 ॥

अथ महा राग भैरव, ताकी रागिनी, पुत्र, पुत्री (छप्पय)

प्रथम भैरवी जानि बरारी गनौ बिभासहि ।
रामकरी गुज्जरी और आसावरि भासहि ।
तिनके है द्वै पुत्र बुखारौबंध सिंधुरव ।
'जयसिँघ' कही बिचारि सुता स्यामा 'रु अडानव ।
संकराभरन दे साख पुनि मारू ता उपराग गनि ।
धैवत सुग्रेह सुर पंच जुत सु आदि राग भैरव बरनि ॥ 514 ॥

द्वितीय राग मालकौस, ताकी रागिनी, पुत्र, पुत्री (छप्पय)

मालसि़री तहँ पेखि और भोपालिय जानउ ।
ककुब खम्हावति समुझि कौंसि कारेवीय मानउ ।
कानरौ बरवै पुत्र चारि पुत्री पुनि सोहइ ।
भीमपलासी मंझ मुखारी सूहौ जोहइ ।
उपराग तासु बागेसुरी भयउ खड्ग तें पट सुरह ।
'जयसिंघ' मालकौसिक सु यह द्वितीय राग जानौ उरह ॥ 515 ॥

तृतीय राग हिंडोल, ताकी रागिनी, पुत्र, पुत्री (छप्पय)

पंचम ललित बिचारि और देसकालहिं जानउ ।
जैतसिरी हमीर धनासिरी चित महँ आनउ ।
बंगाली पूरिया पुत्र पुत्री बहुली गुनि ।
खम्हाइच कल्यान परज धुनि जानि यहै पुनि ।
उपराग कलपतरु तासु है उपजतु सो धैवत सुरनि ।
'जयसिँघ' हिंडोल त्रितीय यह वोडव करि बरन्यौ गुरनि ॥ 516 ॥

512- टबर्ग-डबर्ग (जोध.) ।
515- मालसिरी-मालासिरी (जोध.) । बागेसुरी-बागेसुरीय (जोध.) ।
516- (जोध.) प्रति तृतीय पंक्ति तक ही प्राप्त है, आगे के पत्र नहीं हैं ।

चौथौ श्री राग, ताकी रागिनी, पुत्र, पुत्री (छप्पय)

प्रथमहि गौरी कही और तिरवन पुरवी तिय ।

बहुरि गुनकरी जानि देवगंधार कुमारिय ।

पुत्र टंक षटराग गनौ कन्या जु पहारिय ।

सावेरी मारवी और चैती सु निहारिय ।

उपराग तासु गौरा बरनि रिपिभहि तें उपजतु सुन्यउ ।

'जयसिंघ' कह्यउ श्री राग यह सप्त सुरनि चौथौ गुन्यउ ॥ 517 ॥

पाँचवौ मेघ राग, ताकी रागिनी, पुत्र, पुत्री (छप्पय)

सुद्ध मलारहि बरनि गोंड सोरठ सारंग धुनि ।

देवगिरी तिहि ठौर और मध्यमादि तिया सुनि ।

नाट पूरबा पुत्र कही कन्या सावंथहि ।

कामोदहि सवरी जैजवंती चौथी लहि ।

उपजतु सु आपु धैवत घरह केदारौ उपराग हुव ।

'जयसिंघ' पाँचवौ मेघ है पंच सुरनि परसिद्ध भुव ॥ 518 ॥

छठौ दीपक राग, ताकी रागिनी, पुत्र, पुत्री (छप्पय)

देसी रमन बरनि और कोलाहल जानउ ।

रक्तहंस बड़हंस बिराबर बनिता मानउ ।

प्रसभ कुरंग पुत्र कही कन्या सुघराइय ।

करनाटी नट नाट और पटमंजरि भाइय ।

उपजतु सु आदि गंधार तें ता उपराग विहाग रउ ।

'जयसिंघ' राग दीपकु छठौ पंच सुरनि सु उजागरउ ॥ 519 ॥

(दोहा)

भैरौ कौ बिधि देवता मालकौस हरि जानु ।

ईस्वर है हिंडोल कौ सिरी राग कौ भानु ॥ 520 ॥

पवन देवता मेघ कौ दीपकु अग्नि बखानि ।

छहौ राग छह देवता ऐसे .... ॥ 521 ॥

517- मारवी-मारवो ।

521- (जय.) प्रति, यहीं तक प्राप्त है, आगे के पत्र नहीं हैं ।

प्रतीकानुक्रम

(संख्याएँ छन्दों की हैं)

अंबुज बारि गुलाब-388
अंबुज से द्रग-363
अंबुद के छए-399
अ क च ट त प ज स बर्ग-507
अक्षर एकहि की-314
अक्षिरु फिरि फिरि-320
अचिरजु थाई पीत-279
अति इतराति सतराति-228
अदभुत गति करै-73
अदभुत गति लई-66
अधरपान के करत-219
अधिक औरई तरह-446
अपजस होइ चबर्ग-509
अमल कमल सोहै-236
अलंकार बरननु कर्यौ-486
अलिनि के साथ-94
अवधि चाह पिय-121
अस्तुति निंदा कीजिए-393
आई नारि तो पै-332
आजु न आई-433
आठौ सिद्धि नऊ-365
आदि नकार सु-510
आनन की औरई-361
आनन तुम्हारे की-367
आननु कहत जाकौ-469
आननु तेरौ कहें-341
आननु मेरौ कहें-132
आनि दिखाए अली-175
आपु सुहाती होइ-448
आरोपै कै औथए-462
आली चली आई-465
आवत बाल गली-220
आवति है रिस-158
आवति है सुधि-464
आवतु अंग अनंग-203
आवन साँझ गये-50
आवै ऐसी मन-122
इंद तन हेरत-359
इंद्रनि के साथ-284
इक सब्दालंकार है-308
उद्दीपनानि तच्चेष्टा-301
उपजतु कारज है-383
उपबन घाट बाट-415
उमगे उरज निहारि-64
एक अरथ के-331
एक तरह जो-374
एक नगर कै-264
एक रीति द्वै-368
ए जौ होइ-371
ऐसी भाँति जु-362
औचक मै कछु-209
और तिया के चिन्ह-182

औतिया के भोग-115
औरु न भावै-251
औरै चाहतु है-379
कंचन के आभूपनइ-212
कई भाँति जो-344
कबित सुनें नाटक-303
कमल न सर-256
कमल मध्य रँगु-293
करि सिंगार सिखवै-143
करी रीति तहँ-504
कर्‌यौ है बिचारु-287
कहत एक ही साथ-396
कहत बात जो-420
कहाँ लौ सुजसु-355
कही बात सोई-156
कही है प्रमान-128
कहें देवता कालु-275
कहै एकई बात-350
कहौ और बिन-398
कह्यौ जाइ त्योंनारि-430
कान्ह कही किन-86
काम कला पूरन-258
काम कला मै चतुर-74
काम दुति पूरन-259
कारज उपजै प्रथम-364
कारज बिषै जु-450
कारणान्यथ कार्याणि-297
कारन कारज जे-304
कारन तौ उपजै-381
कारन पाएँ कौनऊँ-442
कारनु अंत ही-440
काहू के संबंध-474
काहू सों कहंति-244
काहू सों न बोलति-206
किलकनि हसनि बसनि-77
किलकि कै हँसनि-337
कीरति राम की-467
कीरति होइ अबर्ग-508
कौतिक कौ देखन-239
क्रिया जौन जाकी-478
खंजन कै अंबुज-345
खेलत कान्ह सखानि-253
खेलत साथ सहेलिनि-200
खेलति हँसति किलकति-124
खेलति है पुतरीनि-57
खेलन कौ नित-92
खेलें फागु राधिकाजू-268
गजनि के घंटनि-409
गरब गहीली अति-161
गाजत घोर घटा-152
गारि दऐ बोलै बुरै-51
गिरवर घन मिलि-497
गोनें आयें तहाँ-265
ग्रीउ लगनि निरखनि-292
ग्रीपम के घाम लगै-110
ग्वालिनि एक लै-174
घटतु बढ़तु यह-377

चंदनु औ' चाँदनी-120
चंदनु औ' चाँदिनी-390
चंदनु गारि गुलाब-495
चंदनु चढ़ाइ चुनि-109
चंपक औ' कंचन-257
चंपक कुंदनु अरु-378
चलन लगै परदेस-123
चलौ जातु अनकूल-45
चितु रहै चकित-201
चित्र स्वप्न परतछि-173
चिहुर औ' पुतरी- 165
चूनरी रंग सुरंग-447
चेतनता सब ठौर-502
चोपरि खेलत कान्हु-179
छकी सी रहति-131
छाड़ि सुत गोद-172
छूटि रही अलकै-347
छूटी लटै उर-471
जब पानि वहै-487
जबरदस्त पै नहि-458
जहँ जुराउ तें-324
जहाँ और के-482
जागे के प्रगट-88
जात जितै तुम-380
जा दिन तें बिछुरे अवधि-145
जा दिन तें बिछुरे जदुराइ-242
जानि अकेले तहाँ-384
जानि परे जिहिं-468
जानी जानी चंद-493
जानु मानु पनु-488
जामिनि जगे की-116
जामें ह्वोइ सु-454
जाहि निरखे तें-407
जिहि बिधि जौनई-342
जे आभरन द्वादस-164
जे बरनी है नाइका-102
जैसी भाँति घन-336
जैसें दोइ सलिताँ-133
जैसे कों तैसौ-391
जो अनमिलती बात-235
जो अस्थापै और-387
जोई आवै मुह-191
जोई जोई कही-118
जोबन गुमानु गज-67
जोबन जोति सरीर-62
जोबन नवेली बै-72
जोबन निकाई रूप-192
जोबन रूप' रु-130
जोरे तें नाही-445
जो है कारन-428
जौन्ह लगै ज्वाल-197
जौ पै कैकी-357
ज्यों धीराधीरा यहै-263
झहर झहर होति-141
डोलति है अलबेली-227
ढूँढति फिरति बड़ी-353
तब कहें होतु-413
तबरग पबरग बैस्य-513
तरह होइ लडबाउरी-243

ताही की ताकों-338
ताही सों रस-306
तिया येक अँग-43
तिहूँ लोक कौ-325
तीनि तरह दूती-150
तीन्यौ लोक जामें-457
तीन्यौ लोक जेर-477
तुम्है मेरी बात-157
तुरत हथ्यार छोड़ि-394
ते बिभाउ अनुभाउ-305
तेंरेई बदन कों-419
तेंरे नेंन देखे-484
तेही रीतिनि सोधि-126
त्रिबिध भेद है-54
थके लौ चरन-63
दंपति परसपर ऐन-185
दंपति मोद कलोल-146
दंपति संग करैं-76
दक्षिन की सुभ-47
दया हू के साथ-397
दरफुल्ल कमल-266
दसरथ काजै परी-282
दान दैन दीननि-329
दानु नही दियौ-382
दारिद हरत न-427
दिननि की थोरी-455
दीबे कों का-424
दीरघ अन्यारे कजरारे-339
दुनी माँझ गुनी-273
दुपहरी जेठ की-96
दुरगँधि आलंबनु कहै-285
दूती नाइक पक्ष-166
दूती हू के लै-117
दूरि करे दुख-459
देखत नेंन ललाई-183
देखत बनति पै-485
देखत ललौंहैं जयसिंघ-82
देखत ही अति-49
देखत है जिहे-52
देखि तहाँ दो-444
देसी रमन बरनि-519
दो बिधि के मानी-135
दो बिधि कौ सिंगार-262
दो बिधि परकीया-91
द्वै बातें संसर्ग-354
धीरा कौ रति-85
धूम बरन जमु-281
नर अरु पसु-288
नलिन तें ताल-373
नलिन रचे है-343
नव रस मानत-296
नवी नाइका है-125
नाइक के सिंगार-159
नागरि और सराहि-180
नागरि करति और-134
नागरि के रसरंग-178
नागरि नलिन नेंनी-90
नागरि नागर रूप-53

नागरि पिय सों-95
नागरि रतन एक-439
नागरि सरस रूप-75
नाम करम जपि-489
निंदरि सबै भै-249
निपट कै जौ-460
निर्मल चंदु अकासु-498
निर्मल रँगु हरि-283
नेंक भए क्रपा-417
नेंननि हौ देखे-170
नेंन बनै ठनै-316
नेंन बस करती-375
नेंन लगे मेरे-250
नेंन लगे रस-405
नेहु जहाँ थाई-291
पंचम ललित बिचारि-516
'पवन झकोरनि उठति-496
पवन देवता मेघ-521
पहिल एक की-416
पहिल कही बक्रोक्ति-333
पहिलें लगै बिरोध-389
पान सुगंध मगाइ-111
पानी लैन गई-168
पारावार पार भयें-271
पावत धनु अति-98
पिय निरखै आलस-217
पीउ गयौ जब-119
पीउ पिया इक-181
पीउ मनावै नेहु-188
पी कत पीक-321
पीढ़ाबंध दकार दै-511
पीतम की निज-89
पीतम चकोर कैसी-349
पीतम बस जाकै-105
पीतम राति रहे-84
पीतम लैन गई-168
पीतम सुख जिहि-78
पीतम सों निज-246
पुनरुक्तवदाभास कहि-334
पुलकानन्दवाष्पाद्या-302
पूछै तें जहँ-434
पूरन है तीन्यौ-453
प्यारी के न्यारे-196
प्यारी पीउ सुभ-499
प्यारु करै पिय-226
प्रकृति लियें पिय-245
प्रगट जनावै चेष्टा-202
प्रथम कहत है-138
प्रथम कहौ द्वै भाँति-61
प्रथम कह्यौ अनकूल-42
प्रथम भूप कह-326
प्रथम भैरवी जानि-514
प्रथम सँवारु करि-160
प्रथमहि गौरी कही-517
प्रथम ही दीननि-392
प्रमथ देवता सेत-267

प्रीति भई कहूँ-137
प्रीति रीति दीजतु-401
प्रीति हियै करि-107
प्रेम उमग अति-207
प्रेम उमग पिय-233
प्रोपितपतिका है कही-104
फिकरत स्यार और-108
फिरि फिरि लै-311
फूलत सरवर कंज-494
बंधु बंधु की-289
बगसत राम कें-481
बनक बसन अभरन-327
बनिता टनि बनि-491
बन्यौ ताकौ कहिए-463
वरनत है उपमान-376
बरननु कीजै और-352
बरननु कीजै जाहि-370
वरननु जाकौ ताहि-418
बरननु जाही कौ-348
बरसनि बरसत लोकनि-351
बसन तें रूपु-431
बस्त कहत हीं-410
बस्त तहाँ होइ-412
बस्तु बरंनिबै जौन-360
बहुतक बस्तै बरनियें-385
बहुत बिकल भई-369
बाँटि लई मिरी-234
बागनि बागनि हौहू-421
बागै औ' बीरा-218
बागै बीरा वनि-114
वात कहत ही-322
वात कही कछू-356
बात कहै कोऊ-309
वात वहुत जहँ-414
बात सुनत कै-199
वातै कहि तोतरीं-295
वातै थोरी कहि-154
बाननि के जोर-386
बाल बनावत भूपन-222
बिन अधार थिति-472
बिन उपमैयहि बरनिएँ-358
विन सिगार मोहति-247
बिप्र वर्न सु-512
विहसनि आसू खुनस-215
बूझति है कबहूँ-93
वूझति है रस की-60
वैठी तहाँ ढिग-240
बैठे धाम मध्य-294
बैन जनावै नेंन-205
बैर बहानै धीर-81
बैरी को न बिजै-395
बोलै लालन सों-237
ब्रह्म यहै माया-503
भएँ और सम्बन्ध-476
भालुक औ' कपि-441
भावति है सब तें-106

भूरे केस जाके-142
भूपन जोवन बसन-100
भूपन न अंग-248
भूपन वसननि साजि-211
भूपन विनु मनौ-254
भूपन सेज तहाँ-136
भेंटत हीं मन-452
भेदु नहीं जिहि-346
भैरौ कौ बिधि-520
भौंहनि कमान मख-101
मंजनु कै अंजनु-163
मंजनु कै सुंदरि-223
मंदिरु झराइ चारु-112
महत्तत्व पहिलें भयौ-501
मान बरनि सुकियानि-177
माफिक ताकै बस्तु-456
मारन जोगु गनावतु-425
मालसिरी तहँ पेखि-515
मित्र मिलै जौ-290
मिलै पीउ दिन-127
मिहीं अरथ जौ-436
मुख्य बताए एक-480
मुग्धा मध्या प्रगलभा-58
मुग्धा मै धीरजु-80
मूरति छबीली अति-41
मूरति छबीली सोहै-176
मेरी मानौ कही-144, 194
मैंन दहन अति-241
मोहन औ' राधिका-232
मोहन के अँग-71
मोहन के मन-315
मोहन के मोहिबे-225
मोहन विदेस गए राधिका-129
मोहन विदेस गए राधिकै-479
मोहन मोहि तहाँ-214
मोहन राधिका भेंटन-210
मोहन लाल सुहाति-313
मोहन सों वदि-437
याकी वा कहि-340
यातें वा बातें-372
यासों नाहीं और-423
येकु हरा हरि के-48
यों जिय दूती-155
रँगमगे नेंन और-147
राम पधारे तहाँ-473
राम लएँ नाम-429
राम सदा सेवत-426
राम हने रापस-286
रावन कौ समुझावन-276
रावन नारि भगी-483
रावन नें तीनौ-274
रावन मारें भए-403
रावन सीता हरी-449
रापस कैऊ हजार-280
रिस करि कै-113
रीति बरनि कही-198

रुद्र अधिप अरु-277
रूप अनूप घनी-195
रूप अनूप दियौ-204
रूप छबि सुंदर-40
रूप लखैं कै-169
रेंनि रहे अंग-87
रैनि दिन येक-68
रैनि रहे कहू-83
लंका जोर खैल-278
लगति प्रगट सी-402
लाज गई न-187
लाज लिऐ सकुचै-59
लाज लियै रहै-55
लाज सकोचहि छोड़ि-190
लाल कहै सो-186
लाल चले जात-46
लालन की प्यारी-310
लालन के बसन-208
लालन कों तलबेली-443
लालन तौ कब के-189
लालन पास है-238
लालन बाल की-216
लालन बुलावत सु-319
लालन लगनि तें-167
लालन सों नव-230
लालन हमारे काजै-193
लाल निरखि मन-221
लाल महावरु पौचहि-148
लाल मिलौ चाहौ-99
लाल लली लाली-328
लाल सुधारत आभरन-213
लै समवो बातै-151
विभावा अनुभावास्तत्-298
विरुद्धो अविरुद्धो वा यं-299
वोडव कहिए पंच सुर-506
पडज रिपभ गंधार-505
पोडस कहत सिँगार-162
संग सखानि कै-461
संपति अधिक जनावई-408
सकुच काम सम-69
सक्ति आपनी बरनि-307
सक्र अधिप कंचन-269
सघन हैं अमराई-260
सब्द वहै अरथै-317
सब्दहि सों अरु-406
समसर देखत हीं-466
समसर सों मिलि-470
समसरि कीजै और-335
समसरि दीबे कों-422
समुझि लेइ जहँ-432
सरवरि सों द्वै-366
सरस सरस कहि-438
सहज माँझ कछु-231
सहज हीं भए-255

सातौ दीप नऊ-323
साथ सदा रहै-435
सारस देखे तहाँ-492
सिसुता मै जोबन-56
सीतु रह्यउ भरिपूरि-500
सुंदर अरु सुकुमारता-224
सुंदरता छबि कै-79
सुंदर नबीली अलबेली-70
सुंदरु बदन देखौ-44
सुखु निरखै जहँ-184
सुचि करि प्रात-272
सुद्ध मलारहि बरनि-518
सुधारे सम्हारि बार-65
सुभट समूह चले-475
सूनै धाम बीथिन-97
सो कहि बिधि-318
सो पुनि कहियतु-270
सोहै स्याम चिहुर-140
सौतिनि कौ रसु-153
स्फुट चमत्कारितया-300
स्याम घटा उठि-411
स्याम घन लखियत-451
स्याम बरन सिंगार-261
स्यामाजू सखींनि लै-149
स्वाधीना अभिसारिका-103
हंस गति जामें-139
हँसै ठौरु नहि-252
हरि हरि निसि-490
हसति रहै बिनहीं-229
हारु हर्‌यौ हरि-330
होइ अरथु जो-404
होइ तही आबृत्ति-312
होतु जहाँ जिहि-400

शब्दकोश

(40) मलूकु=मनोहर । कुलीन=उच्च कुल वाला । परपीर हर=दूसरों के कष्ट दूर करने वाला । जसमंत=यशस्वी । जेतियै=जितनी भी । निकाई=अच्छाई । तेती=उतनी । कोककलाबिद=कामशास्त्र में पारंगत । नित मै=नित्यप्रति, सदैव । निहारि=देखकर, पढ़-समझकर । बरनौ=वर्णन किया है । (41) सूरति=रूप । सुहाति=अच्छी लगती है । बस=वशीभूत । अनरस=रुखाई, कोप । रस=आनन्द । बिलसावै=भोग-विलास में प्रवृत्त करता है । मानिनी=रूठी । तियानि हू की=स्त्रियों की भी । मति=बुद्धि । क्योहू=किसी प्रकार भी । केल कला=कामक्रीड़ा । जामैं=जिसमें । सरसति है=बढ़ती है । सेये=सेवा की, भक्ति की । निज=निश्चय पूर्वक, यथार्थ । (42) ढीठु=धृष्ट । (43) और=अन्य (44) बदन=मुख । तनकहू=1-थोड़ा भी, 2-तन=ओर, कहू=कभी । चितवै न=देखता नहीं है । उर=हृदय । ठई है=स्थिर कर रखी है । दरसि करि=देखकर । पेखी=देखी । (45) बाल=बाला (नायिका) । हाल=उसी समय । (46) निज=अपने । गेह=घर । निहचल=निश्चल। टौर=स्थान । मोहि=मुझे । न निदरिये=निरादृत मत कीजिए । बिथा=व्यथा, पीड़ा । तन=शरीर । तौ'ब=तो फिर । अगरिये=अग्रणी, श्रेष्ठ, उत्तम (पुरुपोत्तम) । (47) रंजै=रंजित, प्रसन्न करता है । (48) उर=छाती । तिन=उसे । समान डिठाई=समदृष्टि, सब पर समान प्रेम । तिनकौ=उनका । रंजि=प्रसन्न कर । लौ=तरह, समान । दौर=दौड़, आवागमन । (49) गाँसु=रहस्य । निपट=निरा, बिल्कुल । निहचे=निश्चय (50) अग=अंग, शरीर । रगि=रँगकर, घुल-मिलकर । और=अन्य (स्त्री) । निसोहै=रात में । सोहै=सौगन्ध । गाँसु=भेद, रहस्य । किन देखत=क्यों नहीं देखते हो ? सोहै=सम्मुख, सामने । नवाइ=झुकाकर । रिसोहै=कुपित । (51) गारि=गाली । तह=परत; तह देना=परत पर परत बिछाना (हँसी की) अर्थात् हँसता ही रहता है । निपट=बिल्कुल । (52) कुलकानि=कुल-मर्यादा । ढिठाई=धृष्टता । अटियतु है=पूरा करता है, बिताता है । अटपटी=अजीब, विचित्र । टेउ=टेंव, आदत । लाज घटियतु=लज्जा घटाना, निर्लज्जता । औटपाई=शरारती, नटखट । अठाबनि=शरारत । गति ठाई=चाल ठानी । ठाट ठटियतु है=कार्य करता है । (53) जा=जिसमें । रोहै=(आरोह) चढ़ा हुआ, बढ़ा हुआ । केलि कला=कामक्रीड़ा । सम दीजतु को है=किससे समता दी जाय । (54) सुकिया=स्वकीया । (55) सील=आचरण, स्वभाव । पेखिये=देखिये । स्रवन=कान । भनक=धीमा स्वर । ईपत=थोड़ी, अल्प । उरेखिये=उरेहना, खिंचना,

चित्रित होना । सकुच=संकोच, लज्जा । सुधाई=सिधाई, सीधापन । बाम=वामा, स्त्री । सम सर=बराबरी, समानता (56) जनैया=जानने वाला, जानकार । अतर मिलौनी बासु=इत्र मिली हुई सुगंध । (57) पुतरीनि=पुतलियों से, गुड़ियों से । मराल=हंस । महाजान=महाज्ञानी । (58) स्वींया=स्वकीया नायिका । (63) कटि=कमर । गरवात=गर्वीले, ठसकदार । चारि पाचक=लगभग चार-पाँच । टौना=जादू । अतन=कामदेव । पसारी=फैलाई । (64) उरज= कुच, स्तन । केलि मेलि=प्रिय से मिलकर कामक्रीड़ा । (65) बार=केश । मार=काम । छये ते=छाया से । दुति=कांति। ठई=ठनी, बनी । चोप=उमंग । धीरियै=मंद । चरन गति=चाल । सीरी=ठंडी; छाती ठंडी होना=चित्त प्रफुल्लित होना, कामना पूर्ण होना । (66) खगत=पैठना । अरुनई=अरुणिमा । पेखियतु=दिखाई पड़ती है । दिन नई=1-दिन प्रतिदिन नवीन 2-नये दिन की, प्रातःकाल की । दई दी । दई=दैव, विधाता । डगत=डगमगाना । जराइ0=जैसे बहुत सी ज्योति जलाई गई हो । जोरिवे को =जोड़ मिलाने के लिए । जोरा=जोड़ा । जगत=संसार में । (67) गज गैन=हाथी की सी चाल । आँकुस=अंकुश । पिक=कोयल । बैन= वाणी । सैन=संकेत, इशारा । दैन=देकर । मैन बान=कामबाण । डीठि=दृष्टि । आनन०=मुख की (सुन्दरता की) अंतिम सीमा वाली, एक से एक सुन्दर, अत्यधिक सुन्दर । बदन=मुख । (68) आपु बस=अपने वशीभूत । जल बास=जल में रहते हैं । तऊ=तो भी । वे=वे (कमल) । जस के=जैसे, समान । मलिन होइ=मुरझाकर । कसके=पीड़ित हुए, दुखी हुए । सलज=लज्जाशील । सलोने=सुन्दर । ऐन=बिल्कुल=पूरा पूरा । दैन=देने वाले । (69) सकुच=संकोच, लज्जा । सम=समान । भाइ=भाव । (70) नवीली=तरुणी । अलबेली=अनोखी । सुरंग=लाल । सौतिनि के= सपत्नियों के । साल=दुख, पीड़ा । रस अटकीली=रसपूर्ण अटखेलियाँ, आनन्द पूर्ण क्रीड़ा मटकीली=नाज-नखरे से हिलने-डुलने वाली, मटकने वाली । मोहनी=भगवान का वह स्त्री रूप जो उन्होंने समुद्र-मंथन के बाद अमृत बाँटते समय धारण किया था । रति=कामदेव की पत्नी । रद=रद्द । गरब गहीली=गर्वयुक्त । अरबीली=आन वाली । गसीली=तीर के समान नोकदार । गसी लौ=तीर की तरह । (71) घातै=दाँव-पेंच । बूझत ही=पूछते ही, पूछने पर । फेरु=बात बनाना । साथिनि कौ=सहेलियों को । बहरावति का तै=तुम क्या बहकाती हो । पल=पलक । निहारनि मै=देखने के ढंग से । (72) बै=वय, अवस्था । हेली=बेपरवाह, अपने आप में मस्त । सीफल=श्रीफल, वेल । उझकि=उचक कर (73) चख=नेत्र । मख=(संस्कृत मपि) काजल या फिर

(संस्कृत मक्ष) क्रोध, अभिमान । अलि=भ्रमर । तो=तुम्हें । घनै=बहुत अधिक, अत्यन्त । पंचबान=कामदेव । पंच बान=कामदेव के पाँच वाण-द्रवण, शोपण, तापन, मोहन और उन्मादन । (75)नागरि=नागरी, नायिका, । ऐन=नेत्र । पगे=सराबोर । सदनु=घर । गज गैन=हाथी की सी चाल । रदनु=दाँत (दंतक्षत्) अंग=शरीर । बदनु=मुख । (76) विपरीतिक=विपरीत रति की । लोलनि=इच्छा । रति=कामदेव की पत्नी । बाल=बाला, नायिका । दुरि कै=छिपकर । (77) रदन छद=दंतक्षत् । खसनि=अपने स्थान से खिसकी हुई, हटी हुई । लसनि =शोभा । ओरे=अंतिम सीमा, अत्यधिक । मरगजे बसन=मसले हुए वस्त्र । पीक=पान की पीक । गैननि मैं=चाल में । सुरत=रतिक्रीड़ा, संभोग । तुरत ही=हाल ही के । (78) लहइ=प्राप्त करे, पाये । लखै=देखती है । सिहाइ=हर्पित होकर । सो सुखु०=अर्थात् प्रियतम के सुख में सुख मानती है । (79) छबि कै=रूप की । तोरौ तिन=तिनका तोड़ना-बलैया लेना-कुदृष्टि से बचाने के लिए लोक में प्रचलित;विशेप रूप से बच्चों को किसी की नजर न लगे, इसके लिए माँएँ कभी-कभी तिनका तोड़ती हैं । (81) बहानै=बहाने से, घुमा-फिराकर । धीर=धीरा नायिका । अनधीरज=अधीरा नायिका । धीर अधीरैं=धीरा धीरा नायिका (82) ललौहैं=लाल । मिलौहैं होत=मिलने पर । भलौहैं=भले, सुन्दर (व्यंग्य) । बहरौहैं=बहलाना, भुराना । झपकौहैं=झपकना । और=अन्य (स्त्री) । बसौहैं=वश में है, वशीभूत । तन=शरीर । परसौहैं=स्पर्श । सरसौहैं=बढ़ना । गोहैं=छिपाना, आँख चुराना । (83) कहू और के धाम=कहीं दूसरी (स्त्री) के घर । हाँ=यहाँ, पास । जामिनि=यामिनी, रात । चारिहू जाम=चारों पहर-जामिनि०=सम्पूर्ण रात्रि । रावरे=आपको । (84) जिहि कै=जिसके यहाँ, जिसके पास । तिहि सो=उससे । कहा=क्या । हाँ=यहाँ, पास । इत कौ=इधर को । कैसेहू=कैसे भी । जावक=महावर । पराये=अन्य (स्त्री) के । (85) बिन धीरज=अधीरा नायिका । खुनसाइ=क्रोध करती है । भाइ=भाव । (86) हती=थी । मो तन·=मेरी ओर । सोहैं=सामने । (87) बहुतेरौ=बहुत भाँति का । पीक=पान की पीक । पल=पलक । जावकु=महावर । सुंदरि केरौ=अन्य स्त्री का । झेरौ=बखेड़ा, झगड़ा । नवै=झुकती हैं । (88) गुन=डोरी । सोही=शोभित । सौतिनि=सपत्नी । सलाए=दुख दिया है । साल=दुख, पीड़ा-सलाए साल=दुख देकर दुखी किया है, पीड़ित किया है । वाके किन=उसी के यहाँ । छिनकु=क्षण भर भी । छके=भरे । (89) उहै=वही । आहि=है । (90) गज गैनी=हाथी की सी चाल वाली । नवला=नई । सैन=संकेत, इशारा । उन में=दूसरी पत्नियों में । औरै=दूसरी पत्नियाँ । अनख्यानी=नाराज हो गईं । रवनी

रवन=पत्नी और पति । (91) क्वारी=कन्या । परजोइ=दूसरे की पत्नी, परपरिणीता (92) मिसु कै=बहाने से । पुतरीनि=पुतलियाँ, गुड़ियाँ । थिर=स्थिर, मंद । गैन=चाल। अयानु बितै कै=लड़कपन बिता कर । तिनि कौ=उनको । जे=जो । कढ़े०=उसकी तरफ देखकर निकले । (93) बूझति है=पूछती है । दुराउ=छिपाव। चोंप=चाह । कल=चैन । पेखी=देखी । गति=दशा, हालत । दरसु=दर्शन । टौरु=मौका । कुल कानि=कुल-मर्यादा । न बसाइ कछू=कुछ भी वश नहीं चलता । क्योंहूँ=कहीं भी-कुछ भी । चकित=चकपकायी । (94) कुंजनि=वह स्थान जिसके चारों ओर घनी लता छाई हो । बीथिनि=गलियों । गुरजन=बड़े-बुजुर्ग । दुरजन=दुष्ट व्यक्ति । साम्ही=सामने । चाहि रहै=देखती रहती है । हित हीं=प्रेम में । (95) सैन=संकेत, इशारा । भैटै=मिले । घात लगाइ=युक्ति भिड़ाकर । भाइ=भाव । (96) निसून=सुनसान । घाम=धूप । बाम मै=विशेप अभिप्राय युक्त या स्त्रियों के बीच में । वोट=ओट । केलि काम=कामक्रीड़ा । घात=अवसर, अनुकूल स्थिति । क्योंहू=किसी प्रकार भी । निसि धाम मै=रात में घर में । (97) अरति=हठ (उत्कट लालसा) । अधरात पछ गत=आधी रात गए । बाम=नायिका । चारौ जाम=चारों पहर, पूरी रात । सोचु=चिन्ता, फिक्र । धरै नाम कै=बदनामी को । (99) तौ पै=तो फिर । कही करौ=कहना मानो । अनगन=अगणित । जनि=नहीं ।अतन=काम । लाइ तन तन मै=शरीर को शरीर में लाकर, मिलाकर । गान बाद अरु नृत=गीत, संगीत और नृत्य । (101) मख=क्रोध । उनमान=तुल्य, सदृश । गुमानु=गर्व । ऐन=टीक, बिल्कुल । जाहिरि=प्रकट । अमान=अपरिमित । खुटिला=आभूपण विशेप । बान=आभूपण विशेप । कान पान=कान का आभूपण विशेप । निसान=ध्वज । (102) उनमान=समान, अनुसार । (106) फेरौ=फेरा, आना-जाना । लोइनि=लोचन। कौइन=आँखों के कोये । गौइन (108) फिकरत=सियारों का बोलना । घूघू=उल्लू । धरा धूरि कै=स्थल । रोंदति है ब्याल=पैरों से साँपों को कुचल देती है । नाकति=पार करती है । न गनति०=मार्ग की दूरी को कुछ भी नहीं समझती । (109) चढ़ाइ=लगाकर । चौसरु चमेली=चमेली की चार लड़ों की माला । घनसार=कपूर । हँसनि किरनि=हँसी की किरण । जौन्हहि=चाँदनी । (110) चित्रसारी=विलासभवन, रंगमहल । बंसीबट= वृंदावन में वह बरगद का पेड़ जिसके नीचे श्रीकृष्ण वंशी बजाया करते थे । स्यामा=राधा । मिस=बहाने से । बाल=बाला, नायिका । लहत है=प्राप्त करते हैं । (112) मंदिरु=घर को । झराइ=साफ कराकर । चाँदिनी=बिछाने की बड़ी सफेद चादर । ठान०=आनन्ददायक मिलन सम्बन्धी कार्यों का आयोजन

करती है । मंजनु=स्नान । कंचुकी=अँगिया, चोली । बीस बिसै=अनेक विचार (113) तिह कौ=उसका (114) वागै=पुराने समय का एक पहनावा जो घुटनों तक लम्बा होता है-जामा । बीरा=पान का बीड़ा । ठौर ठौर=सर्वांग । सिहाइ कै=ललचकर । कलहु=झगड़ा । हमै कहा= मुझसे क्या (115) और=अन्य, दूसरी । भोग=सम्भोग । अनखाइ=नाराज होती है । (116) जामिनि=यामिनी, रात । जावकु=महावर । लटपटी=अस्तव्यस्त । पगिया=पगड़ी । पेच=पगड़ी का फेरा या लपेट । सोंहै=सौगन्ध । वोर=अन्त, छोर । निवाहि=निबाहने की । गुर=मूलमन्त्र । धूत कलाँ पूरे=धूर्तता से भरे । रूरे=श्रेष्ठ । तिहूँ पुर मै=तीनों लोकों में । (118) करि०=मुझे ठीक ठीक बता दो । बैरु=शत्रुता, बदला । और बेर=अन्य समय, अगली वार । लही=पाई, समझ ली । (120) घनसारु=कपूर । लाये=लगाने पर । वोरेऊ=ओले, हिम, बर्फ । उसीर=खस । वोस=ओस, ठंडा जल । न बहराइ=बहलता नहीं है । माह=में । (122) जामहू में=पहर भर में, एक प्रहर में । झेरु=विलम्ब । और=अन्य (स्त्री) । बहुनाइक=अनेक नायिकाओं से प्रेम करने वाला । सिरमौर=श्रेष्ठ। (124) बिहसति=हर्षित । कहि बूझि=कहती है-पूछती है । किसा परसंग=किस्सा-प्रसंग । आनगाउँ कौ चलनु भयौ=परदेस जा रहे हैं । तेही समें=उसी समय । तामें=उसी प्रकार (125) निरधारि=के आधार पर (126) सोधि-शोधकर, विचारकर । दसई=दसवीं । काढ़ी=निकाली । दसवीं काढ़ी=दसवाँ भेद किया । (127) दोक=दो-एक । (129) कल=चैन । छिन=छीन, शिथिल, मलिन । मूल=निकुंज । कूल=किनारा, तट । सूल=पीड़ा । हाल=तुरन्त । निहाल=पूर्ण सन्तुष्ट, प्रसन्न । प्रतिपाल=पालन या रक्षण करने वाला, पोषक-श्रीकृष्ण का विशेषणं । दीपति०=अत्यधिक दीप्तिमान हो जाती है । (130) गरवाहि=गर्व करे । (131) छकी=मदमत्त । इतराति=घमंड दिखाती है । मद=मद्य । (132) भोरे=भ्रम में पड़कर, धोखे में आकर । निहोरे=मनाते हैं । सयाने घनै=अत्यधिक ज्ञानवान, चतुर । जब०=तभी तो इन उपमानों के साथ मुझको जोड़ते हैं । (133) दोइ सलिताँ=दो नदियाँ । पगत=मिलना, एक होना । अंग=शरीर । तौही लगु=तभी तक । जीवन=जल। छीन=शिथिलि, मलिन । मो मह=मुझमें । (134) और=अन्य । अकस=बैर, विरोध । किनि=क्यों नहीं । बरजि=रोककर । बादु=बहस, विवाद । बादि=व्यर्थ । सतराति=क्रोध, बिगड़ना । (135) गौं=अवसर, मौका, मतलब । (136) चाहि=इच्छा, अभिलाषा । गुमानु=गर्व । सजनी=सखी । मन०=मन में कुछ लाये नहीं अर्थात् मेरी ओर जरा भी ध्यान नहीं दिया और न ही पैर रखे अर्थात् पास भी नहीं आए । (137) घात बनाइ=युक्ति भिड़ाकर । (139) तम=अन्धकार ।

उदोतु=प्रकाश । बासु=गन्ध । सोंधे=एक प्रकार का सुगन्धित पदार्थ । भवत=घूम रहे हैं । वार नै=न्योछावर । रुख की=चेहरे की ओर । (140) स्याम चिहुर=सिर के काले बाल । कीर=तोता । स्रीफल=श्रीफल, बेल । गैंन=चाल । वेल=वेला (पुष्प विशेष) । निपट=पूर्ण । कन्है=कृष्ण को । ऐन=पूरापूरा । दैंन=देने वाली । (141) ढोहे=नितम्ब से ऊपर रीढ़ की हड्डी के अगल-बगल के हिस्से । लामै=लम्बे । कुसूल= दोष, कमी । सरेखिए=समझिए । अलप=अल्प, छोटे । लटी लटी=बुरी-बुरी । लेखिए=बिचारिए । निहचे कै=निश्चयपूर्वक । (142) केस=सिर के बाल । चौरौ=चौड़ा । उदरु=पेट । टुमकौ=नाटा, ठिंगना । बदक=बतख । झपटी=तेजी के साथ । हरें=धीरे । चिचियाइ उठै=जोर से बोलती हैं, चिल्ला पड़ती हैं । (144) सिहाइहौ=ललचना, मुग्ध होना । बदौ=मानूँ । (145) अवधि=मिलने का निर्धारित समय । सुध्यौ=सुधि । जामिनि=रात । जगत=जागते हुए । भामिनी=स्त्री । सरोजमुखी=कमल के समान मुख वाली, नायिका । विसारी=भुलाई । (147) रँगमगे=अनुरंजित, रागयुक्त । अरसात=अलसाये । अधर=नीचे का ओठ । रदनु=दाँत, दंतक्षत । सधर=ऊपर का ओठ । कंचुकी=अँगिया । दरकि=दाबवा या जोर पड़ने से फटना । बलया=कंगन । करकि=चटकना । (148) पौंचहि=हाथ की कुहनी के नीचे का भाग-पहुँचा । ककना=लाल रंग का धागा जो विवाह के समय दूल्हा या दुल्हन के हाथ में रक्षार्थ बाँधते हैं- कंकन । बागौ=अंगे की तरह का पुराने समय का एक पहनावा जो घुटनों तक लम्बा होता है-जामा । केसरिया रंग का बागा विवाह के अवसर पर विशेष रूप से पहना जाता था । ती=तिय, स्त्री । अनख्याइ=गुस्सा, नाराज । (149) बसन की पूतरी=कपड़े की पुतली, गुड़िया । पारि=पारना, लेटाना । पटु=कपड़ा । आली नें= सखियों से । पलिका=पलंग । अंक=गोद, आलिंगन । कहकहाइ=अट्ठहास कर, जोर की हँसी । सकुचि=संकुचित, लज्जित । (151) लै समवो=समय देखकर, परिस्थिति के अनुसार । धूत कला=चालाकी की कला । ऐन=पूरीपूरी । (155) बिचारि गई=विचार किया । आमन मौर=आम्रमंजरी । पानि=हाथ । कमान=धनुप । अमान=अपरिमित-कमान अमान=धनुप की डोरी बहुत अधिक खिंची हुई है, पूरी तरह चढ़ा हुआ धनुप । रताऊँ=रत करूँ, अनुरक्त करूँ । (156) बनाइ=बनाकर, अपनी ओर से । (157) आनि कै=आकर । जुन्हाई=चाँदनी । जनि=नहीं । (158) अगै०=सह नहीं पायेगी । (160) 1-सवाँरु करि=उबटन लगाना । 2-मंजनु=स्नान । 3-बसन=वस्त्र । 4-कलगी=मोती या सोने का बना हुआ सिर का गहना 5-तिलक=टीका । 6-केसरि=सुगंधित पदार्थ 7-कुंडल=कर्णाभूपण । 8-दस आँगुरे=आभूपण विशेप ।

9-कराचोली=लोहे की कड़ियों का बना छाती पर धारण करने वाला कवच। 10-करज=नख नामक सुगंधित द्रव्य या हथियार विशेष-बघनखा। 11-कंमरु=कमरकस, फेंटा। 12-कटारी कटि=कमर में कटार (हथियार विशेष)। 13-कंठी=गले का आभूषण 14-बीरा=ताम्बूल। 15-पौंची=मणिबंध। 16-पनही=जूता। (161) गरब गहीली=गर्व को धारण करने वाली, गर्वीली। वारि=न्योछावर, उत्सर्ग। अमल=निर्मल, सुन्दर। विधि=ब्रह्मा। गज गैन ऐन=बिल्कुल हाथी की सी चाल। मैन चैन बैन=काम सुख देने वाले वचन। (162) निजु कै=निश्चय पूर्वक। (163) नायिका के सोलह सिंगार-1-मंजनु=स्नान। 2-अंजनु=आँखों में काजल। 3-माँग=सँवारी हुई। मांग। 4-टीका=माथे पर तिलक। 5-पट सारी=रेशमी साड़ी। 6-तर्‌यौना= कान का आभूषण। 7-बेसरि=नासिका का आभूषण। 8-बारनि गुहाइ=केशविन्यास। 9-उर हार=गले पर माला। 10-छुद्र घंटिका=कमर में घुँघरूदार करधनी। 11-कंकन=हाथ का आभूषण-कंगन। 12-महदी=हाथ में मेंहदी। 13-जावकु=महावर। 14 नूपुर=पैरों का आभूषण। 15-पानहि=ताम्बूल। 16-अतरु=इत्र, सुगंध। (164) अभरन द्वादस=बारह आभरण। (165) नायिका के बारह आभरण-1-चिहुर=केश। 2-पुतरी=आँखों की पुतलियाँ। 3-उरजि लघु=स्तन का अग्रभाग-(स्यामताई=काले)। 4-दसन=दाँत। 5-नख=नाखून-(तारेऊ उज्जल=तारों से भी उज्वल)। 6-अधर=ओठ। 6-करनि=हाथ। 8-चरन=पैर-(अरुनताई=लालिमा युक्त)। 9-पीन कुच=पुष्ट स्तन। 10- नासा कीर=तोते के समान नाक। 11-निपट ही छीन कटि=अत्यन्त पतली कमर। 12-गज गति=हाथी की सी चाल। (167) पठावत है=भेजते हैं। बहु नाइक=अनेक नायिकाओं से प्रेम करने वाला। करमु=भाग्य। (168) पटियाँ=माँग के दोनों ओर तेल आदि की सहायता से कंघी द्वारा बैठाए हुए बाल जो देखने में बराबर मालूम होते हैं। (169) लगनि मगन=प्रेममग्न। (170) चकी सी=चकपकाई हुई सी। बस=वशीभूत। वेऊ=वे भी। पेखौ=देखूँ। मोहि लई मोहि महा=मुझे पूर्णरूपेण मोहित कर लिया है। टोहि=ढूँढकर, खोजकर। काह्वै=क्या किसी को (171) आनँद की मई=आनन्दमयी। ताँसुरी=(त्रासदायिनी) बेचैन कर देने वाली, होशोहवास खो देने वाली। मोहनी मनोज छई=कामदेव की ऐसी मोहिनी छाई, ऐसा जादू छाया कि। गाघरि०=घड़े के धोखे में पुत्र के गले में रस्सी का फंदा डाल दिया। ऊ=वह (पुत्र)। तब०=तब दूसरी स्त्रियों ने दौड़कर पकड़ा। कूप जनि डारै=कुएँ में नहीं डाल देना। जक=धुन। कानन=जंगल। कानन=कान। (172) छाड़ि सुत गोद=गोद के पुत्र को छोड़कर। बिसारि मोद=सुख

भूलकर । सुरली=आनंदित करने वाली, सुरीली । परनि=दूर, परे । जंगम=चलने-फिरने वाला-चर । थिर=स्थिर । सुर=स्वर्गलोक के देवता । नागनि= पाताललोक के नाग । नरनि=पृथ्वीलोक के मनुष्य । सरमै=शर्म, लज्जा । बिधी=विंधना, वेधित । मैन=काम । सर मै=बाणों से । करमै=1-कर्म (धर्म) 2-हाथों में । अधरमै=1-अधर्म 2-होठों में । अधर मै=1बीच में, पशोपेश में 2-नीचे अर्थात् पैरों में । करनि मै=1-करने में (कार्य) 2-कानों में । (173) परतछि=प्रत्यक्ष । (174) नीके०=अच्छी तरह से देखो । मागि=माँग कर । फेरौ=फेरा लगाती है, घूमती है । मुहे=मुझे । उहु=वह । क्योंहूँ=किसी प्रकार भी । (175) आनि=आकर । मुहे=मुझे । झखियों में=झरोखों में । चखियों में=आँखों में । पल=पलक । (176) पेखबोई०=मन करता है कि देखते ही रहिए । मौहनी=मोहित करने वाली । रगीली=आनन्द देने वाली, खूबसूरत । नैसुकु=थोड़ी भी । दुरित=छिप जाता है । तुरित=तुरन्त । (177) सुकियानि=स्वकीया नायिकाओं । (178) औंर=अन्य (स्त्री की ओर) । (179) चोपरि=खेल विशेप-चौपड़ । अनख्याइ=रूठ । छक्कनि गोट=चौपड़ के खेल में पासे का एक दाँव जिसमें पासा फेंकने से छह विंदियाँ ऊपर पड़ें । सारि=गोटी । मारि०=चौपड़ में यह नियम है कि जब दो गोटियाँ साथ रहती हैं तब विपक्षी उन्हें मार नहीं सकता । यहाँ प्रियतम ने अपनी गोटी से नायिका की युगल गोटियों को मार लिया । ती नै=नायिका ने (181) पीउ=पति, नायक । पिया=प्रिया, नायिका । कलोल=क्रीड़ा । बाल=नायिका हते=थे । पोही लरै=मोती पिरोकर माला बनाई । (182) निदानु=अन्तत:, आखिर । (183) बंदनु=सिन्दूर । पीठि दई=पीठ देना-मुँह फेर लेना । सयान=चतुराई । टेंउ=टेव, आदत । ठई=ठानी । (184) जागै=जागने पर । (185) सुरति=स्मृति । पगि कै=पगे हुए, लिप्त । तमकि=क्रोध में । मुरकि=मुड़कर । कर०=हाथ से चारपाई की पट्टी पकड़ ली । पीठि दई=मुँह फेर लिया । सुरति=कामकेलि, रतिक्रीड़ा । द्वावत हीं=दिलाते ही । ग्रीउ=ग्रीवा । (186) गुमानु=गर्व, अभिमान । (187) स्यानु=चातुर्य । सोंहैं=सामने । हितै कै=हितकर, लाभदायक । सीलु-चाल-व्यवहार । हितै कै=अनुकूल करके । नितै कै=भरकर (189) निहोरत=मना रहे थे । अरति कियें=हठपूर्वक, अड़े हुए । सतर=कुपित । केती=कितनी । विरसु=अरसिकता, विगाड़ । टेंटि कै=अकड़कर । रसु= प्रेम । भौंहे ऐंठि कै=भौंहें ऐंठना-कुपित होना । (191) अनबोलौ=बोलचाल या बातचीत का अभाव, अनबन । कैऊ जाम=कई पहर । निपट अयान=नितांत अज्ञानता, सरासर नासमझी । दुख मोच कों=दुख दूर करनेवाले को । कानि=प्रतिष्ठा । रसु=सुख । चाहति ती=चाहती थी । रोच=प्रसन्नता । (192) गति=रूप-रंग ।

सति=सच्ची । किनि=क्यों नहीं । कहा०=विलम्ब क्यों करती है । दुरि=छिपकर । मुरि=मुड़कर । ताकि आई=देख आई । हेरि फेरि=घुमा-फिराकर । ऐन=ठीक, अचूक । पैनें=नुकीले । (193) लालन हमारे काजै=हमारे कृष्ण को । ढोरी लाई=लगन, टेव लगा दी । टौना=जादू । खोरि=गली । काम रौरि पारि=काम-कोलाहल पैदाकर, काम-भावना जगाकर । अरसाती=अलसाती । किनि=क्यों नहीं । करसाती है=आकृष्ट करती है, अच्छी लगती है । (194) सिहाइहौ=मुग्ध होकर प्रशंसा करना । बदौ=मानूँगी । (195) रस सों=प्रेम से । कानि=प्रतिष्ठा । चाहि=देखना । (196) न्यारे=अलग, वियुक्त । उद्दीपन=सुख प्रदान करने वाली वस्तुएँ । (197) जौन्ह=चाँदनी । मृनाल=कमलनाल । ब्याल=सर्प । समसरि=समान । आन=अन्य । आगम तें=आगमन से । चमेली चारु चौसरु=चमेली की सुन्दर चौलड़ी माला । चछु=चक्षु, नेत्र । चपत हैं=दब जाते हैं । (199) कै लखत हीं=या फिर देखते ही । (200) हतौ=था । ती=थी । सोधु न तौ=पता नहीं था, जानती नहीं थी । घरघालनु=परिवार में अशांति फैलाने वाला, कुल में कलंक लगाने वाला । कढ़्यौ=निकला, गुजरा । जिह०=जिसे प्रीति का पता तक नहीं है, जिसमें प्रेम-भाव नहीं है । और०=भाव बदल गए । (201) गवन=गमन, जाना । बहराइ कै=बहलाने के । वाकों=उसको । कर मीड़ै =हाथ मलती है । तवन=तपन । डरवाइ=डरा कर, भय दिखाकर । चेटकु=जादू । चितवन=देखना, दृष्टि डालना । (203) उघरै=उघड़ती है, खुलती है । सोचु=चिन्ता, सोचना । गति=दशा, हालत । (204) जनावतु है =जान पड़ता है । गंजन=तिरस्कृत करने वाले । पी=प्रिय । हरा=हार । जोबन=यौवन । सोबन=स्वर्ण, सोना । तो०=तुम्हारा सुन्दर बना हुआ । (206) खोयौ कहा गयौ=क्या खो गया है । मोहू सों=मुझसे । टोहि लीजै=ढूँढ लो, खोज लो । अरति=हठ (उत्कट लालसा) । जनि=नहीं, मत । काजै०=काम पड़ने पर, काम के समय भूल जाता है । (207) बाम=स्त्री, नायिका । नाह=पति (208) ऊसी भाँति=उसी तरह । ऊसिही=वैसे ही, उसी प्रकार । अंक=आलिंगन । (210) मिसु=बहाना । घनी=बहुत अधिक । दाउ=दाँव, मौका । हटु=प्रयास, कोशिश । चोंप=लालसा । चख चारि भयें=आँखें चार होना-देखादेखी, एक दूसरे को देखना । (212) हाँतें=दूर, अलग । रतनमै=रत्नमय, रत्नजटित । जरी खरी=शुद्ध सोने के तारों से बनी हुई । लरी=लड़ी । फूदा=फूल के आकार की गाँठ जो इजारबंद या धोती कसने की डोरी, झालर आदि के छोर पर शोभा के लिए बनाते हैं-फुँदना । बनाउ सज्यौ=शृंगार रचना की । नगनि डगनि=शरीर हिलने के कारण धारण किये गये रत्नों के हिलने से, रत्न जटित आभूषणों के हिलने से । दीपति=दीप्ति । दिपति=दीपती है, चमकती है । गन=समूह । धन=स्त्री ।

(214) सिगारन=श्रृंगार करना, सजाना-सँवारना । धनभाग=धन्यभाग । सुहाग=सौभाग्य। अनखाइ=नाराज होकर । बनाउ०=श्रृंगार करना आता नहीं है, पर करने में लगे हो । (215) बिहसनि=मुस्कराना । आसू=रोना । खुनस=गुस्सा । (216) बँद=बन्धन । कंचुकी=चोली। सतराइ=कुपित । मोहन=श्री कृष्ण । मोहन कों=मोहित करने के लिए । घात=अवसर, मौका । जावकु=महावर । मोरि=मोड़कर, मरोड़कर, अँगड़ाई । (218) बागै=अंगे की तरह का एक पहनावा जो घुटनों तक लम्बा होता है और जिसमें छाती पर तीन बन्द लगते हैं-जामा । बीरा=बीड़ा, पान । तकि=ताककर, देखकर । अगर्याइ=अँगड़ाई । जम्हाइ=जँभुवाई । चोंप=चाह । (219) झुकै=क्रोध करे । अनखाइ=नाराज हो । (220) धरी=पकड़ी । कर=हाथ से । बसाइ नहीं=नायिका का कुछ भी वश नहीं चला । बस आनि भई=कृष्ण के वश में हो गई । अंक लई=आलिंगन किया । सतराइ रिसाइ=क्रोध और गुस्सा । ग्रीउ नई=गर्दन झुका दी । अधरौ=होठों में । रदनक्षत=दंतक्षत । ट्यों=टेंव, आदत । (222) उताइल=उतावली, हड़बड़ी । बंदनु०=सिन्दूर काजल के स्थान पर अर्थात् आँखों में लगा लिया । कर आँगुरी=हाथों की अँगुलियों में । बनाउ०=सिंगार किया है । (223) मंजनु=स्नान । पाटी पारि=माँग के दोनों ओर तेल या जल की सहायता से कंघी द्वारा बैठाए हुए बाल । सतराइ=रोषपूर्वक । कजरौटी=काजल की डिबिया । टक=टेक । धन=स्त्री, नायिका । प्रकृति=स्वभाव । उहै=वही । अनगन=अनेक, अनगिनत । (225) जैतवारि=जीतने वाली । गंजन=नष्ट करने वाली । गुननि०=गुणों से परिपूर्ण, गुणवती । बेली=लता । समाधिका=समाधिस्थ, दिव्य शक्ति प्राप्त । दुति=कान्ति । राति आधिका=आधी रात । बारन=केश । (226) बालहि=नायिका को । गुमानु=गर्व, अभिमान । निहचे कै=निश्चित । (227) मन मेलू=मन में जो ठान रखा है वही एक । दीन=दुखी, संतप्त उन तन=उनकी तरफ । कर कै=हाथों से । टकु=टेक, जिद, हठ । बानि=आदत । आनि=अकड़ने, ऐंठने की । माती=मदमत्त, मतवाली । (228) इतराति=ठसक दिखाना, ऐंठ दिखाना । सतराति=क्रोध करना । पानि=पाणि, हाथ । पान=ताम्बूल । बानि=आदत । कानि=इज्जत, मर्यादा । अयानु=अज्ञानता, नासमझी । कानि=लिहाज । महाजान=महाज्ञानी । गुमानु=अभिमान। अधिक०=कामदेव आकर बहुत तेज बाण मारेगा । (230) अधरौ=नीचे का ओठ । सधरी=सधर-ऊपर का ओठ । सिहावै=लुभाती है । (232) कहकहाइ=जोर से हँसती है । कढ़ी=निकली । टक=किसी ओर लगी या बँधी दृष्टि, बिना पलक गिराए लगातार देखते रहना । गात=शरीर (234) मिरी=दोनों हस्तलेखों में यही पाठ है । अर्थ स्पष्ट नहीं हो सका । एक 'भिरी' या 'भीरी' शब्द मध्यकालीन काव्य में मिलता है । जिसका अर्थ खेल के सन्दर्भ में गुट या समूह होता है । वह यहाँ बैठता

भी है । पिया प्यारी=नायक और नायिका । गैद=गेंद । कुसम्ह=फूल । घालती है=चलाती है, मारती है । दीसै=दिखाई देती है । लसी=शोभित हुई । (235) अनमिलती=असम्बद्ध, बेमेल । (236) टेव=आदत । प्रकृति=स्वभाव । चूकि चूकि=गलत-गलत । बैननि सबै=सब बातें । (237) खुनस माँह=गुस्से में । रगि जाइ=रँग जाय, भर जाय । (238) घनी=बहुत । चोंप=चाह । चाहि=देखना । वोर=ओर । रगायो=रँग लिया, भर लिया । (239) संपरदाउ=संप्रदाय (काव्यशास्त्र सम्बन्धी) । (240) ढिग=समीप, पास । सिगारु=श्रृंगार । चोंप=चाह । मंग=माँग । (241) रंगु=आनन्द । (242) जदुराइ=यदुराय, श्रीकृष्ण । किसा=किस्सा, कहानी । पानि=पाणि, हाथ । बान कमान=धनुप-बाण । ही=हृदय । तिसा=तृष्णा, प्यास । नाहु=प्रियतम । निहारिकै=देखकर, याद करके । (243) लडबाउरी=जो लड़कपन लिए हो, गंभीर न हो । माते=उन्मत्त । बानि=आदत । निहचे कै=निश्चयपूर्वक । (244) खसी=खिसकी, हटी । बहि कै=फैलकर । बरंज्यौ=रोकना। टक=हठ, जिद। विन हसी=बिना हँसने की बात के । हसी=लोकनिन्दा, बदनामी । (245) प्रकृति=स्वभाव । निदान=एकदम, पूर्णरूपेण (246) निज=सच्ची । ती=तिय, नायिका । पल=पलकें । कल=चैन । नेक=थोड़ी । वोट=ओट । (248) पट=वस्त्र । जौन्ह=चाँदनी । बनाउ=बनाव, सिंगार । सुभ=शुभ, सुन्दर । सलौनी=लावण्य युक्त, सुन्दर । खगी=पैठी । जैसें०=बादलों के हटने पर जैसी चन्द्रमा की दीप्ति होती है वैसी ही मुख की दीप्ति है । चितौनि=देखने का भाव या ढंग । कान्हर=कृष्ण । (249) निदरि सबै=सबकी उपेक्षा कर । भै=भय । (250) घैरु=बदनामी । टकु लाइ=टकटकी लगाकर, लगातार । तन=ओर, तरफ । कुलकानि=कुल की मर्यादा । कितौ=कितना । लुगाई=स्त्रियाँ । कहा अनखैहै=क्या नाराज होंगी, नाराज होकर क्या कर लेंगी । (251) औरु=अन्य कुछ भी । फिरै०=लौटाए नहीं लौटता । घैरु=बदनामी । लुगाई=स्त्रियाँ । तिन्है=उनसे । बूझौ=पूछो । कियौ०=तुम्हारा क्या किया है, तुम्हारा क्या बिगाड़ा है । (252) हँसें=नायिका के हँसी-मजाक करने पर। ठौरु=उचित स्थान या समय । (253) गौने की राति=पति से मिलन की पहली रात । केलि=क्रीड़ा । जेव=जो । काम कलोल=कामक्रीड़ा । घातें=दाँव-पेंच । तारि=दृष्टि । कीन्ही चलावनी=वहाँ से जाने लगा । लिए धरि=पकड़ लिया । ग्वालनि=गोपी (नायिका) ने । बीच महा तें=बीच में ही से, बीच रास्ते से । (255) मादिक=मद्य । मते से=मद्य पिए से । मोहि=मोह । निकाई=सुन्दरता । अनही

सुमन=बिना पुष्पों के, बिना साज-संभार के । (256) सर=समता । कर=हाथ । प्रगासु=प्रकाश । दुति=द्युति, चमक । आभासु=झलक । (257) चंपक=हलके पीले रंग का फूल । बैननि सुधा=वचनामृत । स्रवननि=कानों में । धारियतु है=डालती है, भरती है । करनि की=हाथों की । गज कुंभ=हाथी के माथे पर दोनों ओर उठे हुए भाग, हाथी का उभरा हुआ मस्तक । कुच=स्तन । कटाछनि=तिरछी नजर । फिरि कै=घूमकर । खंजन=पक्षी विशेप । गंजन=तिरस्कृत करने वाले । नेंन०=आपके नेत्रों पर कामदेव अपने बाण न्योछावर करता है । (259) दुति=द्युति, चमक । बिधि=विधाता । बसीकरन=किसी को अपने वश में करने का मन्त्र-वशीकरण । अंग=शरीर दीपति=दीप्ति, प्रभा । दिपति=दीपती है, चमकती है । चकचोंधी=आँख का अत्यधिक प्रकाश के सामने ठहर न सकना, प्रखर प्रकाश के सामने आँखों की झपक । (260) अमराई=आम का बाग । मौरी=मंजरित हुई, बौर लगना । नव दल=नये पत्ते । मौर छोर=आम्रमंजरी के ऊपर । तड़ाग=तालाब । चकचोंधी=अत्यन्त तीव्र प्रकाश के सामने दृष्टि स्थिर न रहना । भोर=प्रात:काल । गुललाला=एक प्रकार का लाल फूल । पाननि की=पत्तों की । बनि ठनि=सज-सँवर कर । वोर=ओर, तरफ । (261) बरन=वर्ण, रंग । (264) कै=या फिर, अथवा । केंहूँ=किसी प्रकार भी । अतिवंत=अत्यन्त । (265) गोनें=विवाह के बाद की एक रस्म जिसमें वधू प्रथम बार पतिगृह आती है । भेंटन=मिलन । केहूँ=किसी प्रकार भी । और=अन्य । जतनु=यत्न । तेंहू=वह भी । गुरजन=बड़े-बुजुर्ग । अटक=रोक, संकोच, हिचक । मटक=मटकन, भावोद्वेलन । टकँ=चित्त में टिका या बैटा हुआ संकल्प, टेक । समें हू=समय में भी । (267) प्रमथ=शिव के गण । सेत=श्वेत । थाई=स्थायीभाव । (268) फागु=होली । मूठि=मुट्ठी । बस=अधीन । कराई में=काले रंग में, स्याम रंग में । जनावै=जान नहीं पड़ता । ख्याल=खेल । दुहूँ पल=आँखों की दोनों पलकों पर । (269) सक्र=शक्र, इन्द्र । अधिप=अधिपति, देवता । बरन=रंग । थाई=स्थायीभाव । जिहि जीतै=विजित । आलंब=आलंबन । (271) पारावार=समुद्र । आननु=मुख । अरुन=लाल । चमू तन=सेना की ओर । हेरि कै=देखकर । सुभटनि=योद्धाओं को । पान दैकै=पान देना-साहसपूर्ण कार्य का भार देना, सौंपना । हुकमु=आज्ञा । रापस=राक्षस । चाँप धुनि=वह ध्वनि जो धनुष की डोरी खींचने से होती है-धनुप की टंकार । कर=हाथ । उलछारि=उछाल कर । टेरि कै=ललकार कर । सुरनि=देवताओं । मनमान्यौ=मनमाना, अत्यधिक । फेरि कै=पुन: । (272) सुचि करि=शुद्ध-पवित्र होकर । दुजनि=ब्राह्मणों । भिछुक=याचक । नवाजही=कृपा करते हैं, दया दिखलाते हैं । दुनी=दुनिया । दीन दुख्ख=गरीबों के दुख-कष्ट या फिर

दीनता और दुख । उवै=उगने पर । घोर०=घनघोर अँधेरा भाग जाता है । बावरी=चौड़ा और बड़ा कुआँ जिसमें उतरने के लिए सीढ़ियाँ होती हैं-बावड़ी । तड़ाग=तालाव । होति०=नित्य प्रति अधिक होते जाते हैं । जग्य=यज्ञ । सकल०=सारा साज-सामान तैयार करते हैं । रत परकाज माझ=लोक कल्याण में लगे हुए । सब ठौर=सर्वत्र । बिराजही=विराजते हैं, मौजूद रहते हैं । (273) दुनी=संसार । गुनी काजै=गुणियों के लिए । नग=रत्न । अनगत=अगणित । साल=शाल-दुशाला । सुखपाल=एक प्रकार की पालकी । माल=धन-दौलत । हाल=तुरन्त । बेगि=शीघ्र । बाज=घोड़े । बगसत=देते हैं । छिनकु=जरा भी । बार=देर, विलम्ब । धरि=धरा पर, संसार में । गरीबनवाज=दीनों पर दया करने वाले, यहां राजा । गरीब०=संसार में गरीब को गरीबनवाज बना देते हैं, रंक को राजा बना देते हैं । (274) मद्धि=मध्य । कलेस=दुख, कष्ट । परपीरहरन=दूसरों की पीड़ा हरने वाले । नवाजें०=शरण में आने वालों पर दया करते हैं । जनु=व्यक्ति (भक्त) । असरनसरन=अनाथ या निराश्रय को आश्रय देने वालें । नाउ=नाम (275) थाई=स्थायीभाव । कारौ=काला । अलंबु=आलंबन। (276) मरदानै=बहादुर । (277) अधिप=अधिपति, देवता । अरुन=लाल । (278) खैल भैल=खलबली । वाजिनि कौ=घोड़ों का । नाद=घोष, आवाज । सैनु=सेना । गाजै=गर्जना करता है । मारु=मारकाट । तन=शरीर । हाँकै=युद्ध में धावा या आक्रमण करते समय गर्वसूचक चिल्लाहट, ललकार, हुंकार । जनि=नहीं । जूथनि पहार=पहाड़ों के दल । भक=तेजी के साथ, तीव्र गति से । रुंड=बिना सिर का धड़, कबंध । चमू=सेना । (279) अचिरजु=आश्चर्य । अपूरब=अनोखा, अलौकिक । (280) रापस=राक्षस । आनि=आकर । भेलौ=भिड़न्त । खंडि=खंडित । रुंडनि=बिना सिर के धड़, कबंध । झुंड=समूह । झिरै=झरता है । श्रोनु=खून । सेल्हनि=बरछा, भाला । (281) धूम=धुआँ । बरन=रंग । जमु=यम । अस्थाई=स्थायीभाव । (283) सम=शम । जगु अनरुचि=संसार से विरक्ति । (284) इंद्रनि के=इन्द्रियों के । त्रिपित=तृप्त । सत्ति=सत्य । आनँद०=पूर्ण आनन्द स्वरूप । (285) घिनि=घृणा । (286) हनें=मारे । रापस=राक्षस । करोरि=करोड़ों । करबाल=तलवार । काढ़ि=निकाल कर । मुंड=सिर । रुंड=कबंध । फबही=शोभा देता है । हाड़नि=हड्डियों । गूदि गूदि=तोड़-तोड़कर, चबा-चबाकर । पिसाच=एक हीन देवयोनि, भूत । गूद=हड्डियों के भीतर का सार भाग, गूदा । जुगिनी=रणपिशाचिनी । लोहू=खून । जंबुक जमाति=सियारों या गीदड़ों का समूह । चौंथत है =नोचते हैं, फाड़ते हैं । पारावार=समुद्र । सोंनितु=खून । ईसु=शंकर । सीसनि कौ=सिरों को, मुण्डों को । (287) थपौ=स्थापित । निरवारि कै=निर्णय करके । घिनि=घृणा ।

कलोल=क्रीड़ा । सिहारि कै=सिहार करो विचार करो, देखो । साहित सु दर्पन=संस्कृत-आचार्य विश्वनाथ प्रणीत 'साहित्यदर्पण' नामक ग्रन्थ । (288) रोचु=प्रवृत्ति, रुचि । सोचु=विचार । (291)नेहु=स्नेह । कलोल=आमोद-प्रमोद । (292) ग्रीउ लगनि=गले लगाना । (293) कमल मध्य रँगु=कमल के मध्य भाग का रंग (शुभ्र-पीत) । बरन=वर्ण, रंग । देबी=गौरी आदि मातृकाएँ । देवत=अधिदैवत, अधिष्ठातृ देव । (294) तोतरी=वर्णों और शब्दों का अस्पष्ट उच्चारण । रगत है=आनन्दित करता है । बलैया=बलैया लेना=किसी का रोग-दुख अपने ऊपर लेना, मंगलकामना करते हुए प्यार करना (प्रायः स्त्रियां बच्चों के ऊपर से हाथ घुमाकर और फिर ऊपर ले जाकर इस भाव को प्रकट करती हैं) । दोऊ=दोनों (नन्द और यशोदा) । मोहि=मोहित होकर । बतरस=बातों के रस से । पगत है=डूब जाते हैं । बूझि देखौ=विचार करके देख लो । (295)तोतरी=शब्दों और वर्णों का अस्पष्ट उच्चारण । बिरझत=मचलना-रोना । लार=पतला लसदार थूक जो बच्चों के मुंह से तार के रूप में निकलता है । (296) सक=शंका-सन्देह । घिनि=घृणा । मोदु=आनन्द । (303) कबित=काव्य । भोइ=युक्त हो जाना, भावित होना । (304) कारन कारज=कारण-कार्य । रत्यादिक=रति आदि । थाईनि=स्थायी भावों । कबित=काव्य । नृत्त=नृत्य-नाट्य । (307) सिगरे=सम्पूर्ण । भाउ=भाव । डिठाउ=दृष्टि में रखकर, देखकर । (308) अरथहि=अर्थालंकार । सुक्षम=सूक्ष्म । (310) तो सी=तेरे जैसी । हौ ही=मैं ही । मो सी=मेरे समान । घनी=बहुत । मोहन=1-श्रीकृष्ण 2-मोह नहीं । हौ हूँ=मैं हूँ । निरमोही=मोह रहित । मनी है=मनमर्जी । चाह=अभिलाषा । चाह=खबर, समाचार । (315) धन में=स्त्रियों में । बनी ठनी=सजी-सँवरी । गन=गण, समूह । गुण=1-डोरी 2-गुण । तन=1-जरा में 2-शरीर । (316) अतन=काम । अनियारे=नुकीले। अमल=निर्मल । कल=सुख । पल=पलक (317) भासतु है=आभासित होता है, झलकता है । (318) 1-नायिका किस प्रकार आवे, सो नायक को ही (अपने पास) बुला लेती है । 2-किसी प्रकार सही, कैसे भी हो, नायिका आती है, नायक (उसे) बुला ही लेता है । (321) पी=प्रिय । कत=कैसे । पीक=पान की पीक । पल=पलक । लोइन=लोयन, नेत्र । कौइन=आँख के कोये, रात्रि-जागरण से आँखों के कोये लाल हो जाते हैं । महाउर=महावर, जावक । महा=अत्यधिक । उर=छाती । उरमाल=वक्षस्थल पर अन्य स्त्री की माला का अंकित चिह्न । जोरत=जोड़े, मिलाए । रत=अनुरक्त । सोंहें=सामने । सोहैं=सौगन्ध । कानि=लज्जा । घनेरी=अत्यधिक । (323) बरिवंड=बली, बलशाली । खल खंडिबे की=दुष्टों को नष्ट करने की । एँड़=टसक, गर्व ।

मेंड़=सम्मान या गौरव की सीमा, मर्यादा । रुंडनि=कबन्धों । ढंड=ढेर । झुंड=समूह । सुंड=हाथियों के सूँड़ । डुंड=ठूँठ-पेड़ों की सूखी डाल जिसमें पत्ते आदि न हों । खग्ग=खड्ग । मारतंड=सूर्य । डंडतु=1-दण्डवत् करता है, प्रणाम करता है 2-दण्ड देता है । अडंडनि=अदण्डनीय-विद्वान आदि 2-निर्द्वन्द्व, स्वेच्छाचारी । मंडि=मण्डित । खुनस=क्रोधित, रुष्ट । वारि=जल । (324) जुराउ=जुड़ाव । बर्न=वर्ण । (325) धनी=स्वामी । दीपति=प्रकाशित । सौ सहस्र=लक्ष । सोधि=विचार कर । चित्तह=मन में । किहि कहँ=किस को । अवधि=अयोध्या । (326) भूप=राजा । बरनि=वर्ण, अक्षर । आनउ=लाओ । आठ पसेरी=पुरानी तौल में पाँच सेर का बाट पसेरी कहलाता था और आठ पसेरी (चालीस सेर) का एक मन होता था । उनमानउ=अनुमान लगाओ । षोडस=सोलह । आनि=लाकर, उपस्थित कर । सोधि=खोज, विचार । आदि आदि=प्रथम-प्रथम । लहउ=प्राप्त करो, लो । सुडिढ़=सुदृढ़ । अर्थात् प्रथम चरण-'राजा' का 'रा', द्वितीय चरण-'मन' का 'म', तृतीय चरण-'चंद्रमा' का 'चं' और चतुर्थ चरण-दृग > द्रग का 'द्र' मिलाकर बना- 'रामचंद्र' । (327) बनक=सजावट । बगर=घर । दरद=दर्द, कष्ट । दरबर=शीघ्र । नर बर=उत्तम व्यक्ति, सज्जन । तनक=थोड़ा । ढरत=द्रवित होनें पर । बगसत=देते हैं । बर=श्रेष्ठ । जरकस=जिस पर सोने आदि के तार लगे हों, बहुमूल्य वस्तुएँ । (328) लाल=नायक । लली=नायिका । लाली=प्रेम, प्यार । ललै=इच्छा, आकांक्षा । लीला=केलि, क्रीड़ा, प्रेमविनोद । लौ=चाह, राग । लाला=लालायित । (329) दान=श्रद्धा या दयापूर्वक दूसरे को धन आदि देना । दैन=देने के लिए । दीननि=दीन-हीन, गरीब । दुनी=दुनिया । दान=जल-दान देते समय संकल्प करने में जो जल हाथ में लिया जाता है । नदौ=सरोवर । नद=समुद्र । दिन दिना=दिन-प्रतिदिन । निदान=कारण, फलस्वरूप । (330) हर्यौ=हर लिया । हरि=श्रीकृष्ण । हेरि=देखना, खोजना । रुराही=रोने को होना । हरै ही हरै=धीरे धीरे । हहरी=काँपना। रोहि=रोना । रुरु=तेज स्वर । राह=रास्ता । हेरु=खोज कर । हरी है=हार गई है । हारु=थक-हारकर । रुरै=रोना । होरी=होली । हुरिहारे=होली खेलने वाले । हहा=हँसना, हँसी-ठट्ठा । रहुरारि=रौहर, शोर करते हँसते-हँसाते भागा-दौड़ी लपट-झपट । ररी=मचाई है । हरि है ही हौ=श्रीकृष्ण के पास ही है । हेरौ=देखा । हाहा=हँसी । हरी=प्रसन्न । या फिर, हाहा=हाय-हाय । हरी=हर ली । (332) बानकु=वेश । सरसु=सुन्दर । कर कर=कठोर, कड़ा । सुमन=अनुकूल मन, मन से

अनुकूल । निरखत=देखते हैं । मग=मार्ग । रुखु दैहै=प्रवृत्त हो जायेंगे । छपा=छिपाकर । रैनि=रात । सपतें=शपथ, सौगन्ध । (335) समसरि=समता । (336) स्वाति काजै=स्वाति नक्षत्र के जल के लिए । एँन=बिल्कुल, पूरी तरह । अलि=भौंरा । (337) सुरंग=लाल रंग । बिंवी=बिम्वाफल, कुँदरू । पवाँरी=प्रवाल, मूँगा । नग=नगीना । लालन=माणिक्यों को । दलत है=व्यर्थ करती है, नष्ट करती है । मोहन=मोह उत्पन्न करने वाली । मोहन=एक प्रकार का तान्त्रिक प्रयोग-मोहन मन्त्र । मोहन=श्रीकृष्ण । स्याम दसननि=काले दाँत-स्त्रियों द्वारा दाँतों में मिस्सी लगाकर उन्हें काला और सुंदर वनाने की परम्परा रही है । (339) दीरघ=दीर्घ, विशाल । अन्यारे=नुकीले, पैंने । भारे=अत्यधिक । सुढारे=सुन्दर रूप में ढले हुए । सम=समानता । टोहिए=ढूँढिए, खोजिए । रोहिए=धारण की । चटकीले=चमकदार, आभायुक्त । (341) जौन्ह=ज्योत्स्ना, चाँदनी । रुख=आकृति । (342) ऊटै=कहना । (343) सम काजै=समानता करने के लिए । जोरिवे को=जोड़ मिलाने को । अमृत सदन=अमृत का घर-सुधाधर, सुधाधाम । पटतर=समता, बराबरी । दबही=दबना, पीछे रह जाना, ठहर न सकना । (344) बस्त=वस्तु । (345) कैधौं=अथवा, या फिर । पानिप=ओप, आब । निज करि=निश्चित रूप से, पूरी तरह । काहू=किसी । ऐन=बिल्कुल, ठीक । सर=बाण । मैन=कामदेव । (347) अलकै=लटें, केश । सोहनी=सुहावनी, सुन्दर । ऐन=पूर्णरूपेण। सुरचाप=इन्द्रधनुप । बगपाँति=वगुलों की पंक्ति । मुकताहल=मोती । मोर लौं=मयूर की तरह । (348) उथपि=उखाड़कर, निपेधकर । थापिए=स्थापित किया जाय । और=अन्य (उपमान) (349) टक=एकटक देखना । धन=स्त्री, नायिका । बदन=मुख । (350) अस्लेप=श्लेप । निहचै=निश्चय । (351) बरसनि बरसत=वर्पा करता है-1-जल की 2-आनन्द की । त्रिपत=तृप्त । दारिद=1दरिद्रता 2 कष्ट । दीननि=1-दरिद्र 2-दुखित, संतप्त । तपन=1-गर्मी 2-दुख, पीड़ा । खलक=संसार । जीवनि=1-जल 2-जिन्दगी । प्रतिपालत है=पालन या रक्षण करता है । स्याम घन=1-काले बादल 2-घनश्याम, श्रीकृष्ण । (353) वार=देर । कैऊ वेर=कई वार । मोहि=मुझे । उमग हुलास=उमंग-उल्लास, प्रसन्नता । उरमाल=गले की माला । कौन कै धौ=पता नहीं किसके । (354) संसर्ग विनु=विना सम्बन्ध, असम्वद्ध । (355) बचनेस=ब्रह्मा । एक पाइ हय=एक पैर का घोड़ा । धायौ=दौड़ना । नान्है=छोटे । फबै=शोभित हो । (357) कैकी=मोर । अमराई=आम का बाग । दादुल=दादुर, मेंढक । झिल्ली=झींगुर । कलोलति=कलोरना, किलोल करना, अवाज करना, बोलना । बगपाँति=बगुलों का समूह । आपु मनभाई मै=अपनी मस्ती में । (358)

उपमैयहि=उपमेय के । जिहि जागा=जिस जगह, जहाँ । (359) इंद तन=चन्द्रमा की ओर । हेरत=देखना । निरखि=ताकना । गजगैन=हाथी की चाल । मृग द्रग=हिरन की आँखें । सीफल=श्रीफल। उर=हृदय, छाती । गसति=गसना-भरना, छा जाना । अहिनि=सर्पिणी, नागिन । दामिनि=बिजली । (360) बस्तु बरनिबै=वर्ण्य विषय । औरै=भिन्न प्रकार से । (361) निकाई=सुन्दरता । नीकीयै=सुन्दर । भाति=शोभा । सरसाति=बढ़ती है । कहा०=कहते नहीं बनता, वर्णन करते नहीं बनता । निपट=एकदम, बिल्कुल, बहुत अधिक । निकाति=सुन्दरता बढ़ना, नजदीक होना । (363) कै से= की तरह, के समान । बिंवी=बिम्बाफल, कुँदरू । सोहन=सुहावना, सुन्दर । दुति=द्युति, चमक । दातनि=दाँतों की । चाँप=धनुप । (364) कारज=कार्य । कारनु=कारण । निहचै=निश्चय । (365) आठौ सिद्धि=योग की अष्ट सिद्धियाँ-अणिमा, महिमा, गरिमा, लधिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व और वशित्व । नऊ निद्धि=नौ निधियाँ, कुबेर के नौ प्रकार के रत्न-पद्म, महापद्म, शंख, मकर, कच्छप, मुकुंद, कुंद नील और वर्च्च । बावन=वामन (अवतार) । जाम=याम, पहर । जननि के =लोगों के । (366) सरवरि=उपमा अर्थात् समान धर्म । द्वै=दोनों (उपमेय और उपमान वाक्य) । निवहती=निर्वाह होता है । आखर०=भिन्न अक्षर, शब्दान्तर । (367) गुपित=गुप्त, अदृश्य । केतौ=कितना । पनाँ=पन्ना (रत्न) । पटतर=समता, बराबरी । (369) बहराइ=बहलाना । अरति=हठ (रट) । (371) माफिक=अनुकूल। निजु कै=निश्चय पूर्वक, पूर्ण रूपेण । बिसरै=भूलना । बस=बसना, बस जाना । खन=क्षण । कररे=कड़े, कठोर । न काम आवै=काम नहीं आते, सुख नहीं देते । कामिनी=स्त्री-कोमलांगी, जो कर्कशा न हो । कमान=धनुष-लचीला । तुरी=घोड़ा-फुर्तीला । (372) वा=वह । बातै अवर=दूसरी बातें, उत्तरोत्तर वर्ण्य वस्तु । (373) अमराई=आम का बाग । मौर=आम्रमंजरी । सरसु=बढ़कर, उत्तम । (375) हाइ भाइनि कै=हावभावों के द्वारा । कानि=कान । सकल=सम्पूर्ण । रुचि=स्वाद (रसना) । गात=शरीर (त्वचा) । भए रहे रति ही=रति में निमग्न रहते हैं । सुतु=सीप । पाँच इंद्री=पंच ज्ञानेन्द्रिय-चक्षु, श्रोत्र, नासिका, रसना और त्वचा । त्रिपित=तृप्त । (377) बासर=दिन । कदन=दुख । ऊ तौ=वह तो । निपट=पूरी तरह । लजाइ जाइ=लजा जाता है, सिमट जाता है । पतियाइ=विश्वास करे, सच माने । रमा के सदन कौ=कमल को । मूरति मदन=कामदेव की मूर्ति । कहा पूजत=कहाँ बराबरी कर पाते हैं । (378) पटतर=सादृश्य । समसरि=उपमा । पोडसऊ सोलहों, सभी सोलह । (379) मैटै=निपेध करे । थापै=स्थापित करे । (380) हाल=हाल में, थोड़े ही दिन हुए, नया-नया । उर=हृदय । साल=दुख, वेदना । जाउ चले=चले जाओ ।

का=क्या । कहिए०=कि बात बढ़ाकर सारा किस्सा कहें । जु'ब=अब तो । बूझें तें=पूछने पर । (381) परिबान=प्रमाण । (382) दल=सेना । फुरमाए=सच्ची में, वास्तव में । स्याम घन=घनश्याम । अरिनि=शत्रुओं । नैर=नगर । उदबास=उजाड़ । कौतिकु=कुतूहल, अचम्भा । (384) रापस=राक्षस । कोरि=करोड़ों । टिले=बलपूर्वक बढ़े, घुसे । सुर=देवता । दूपन=रावण का एक भाई जो शूर्पणखा के नाक-कान कट जाने पर बाद में खर सहित राम के हाथों मारा गया था-खर-दूषण । बालि=किष्किन्धा का वानर राजा-अंगद का पिता और सुग्रीव का बड़ा भाई । हन्यौ=मारा । दसग्रीउ=रावण। खेत=रणक्षेत्र । ऐंड़=गर्व, ठसक । पेंड़=मार्ग । पेंड़ धरै=पेंड धरना-चलना । हकनाहक=व्यर्थ, फिजूल । (385) बस्तै=वस्तुएँ । (386) साँकरे में=संकट के समय में, कठिन समय में । रस रंग=विलास । अरिनि=शत्रुओं । जननि=सज्जनों । (387) अस्थापै=रखना, स्थापन करना । (388) बारि गुलाब=गुलाबजल । उसीरहि=खस । बिवोगिन=वियोगिनी । आपु में=स्वयं में, खुद में । निबाहु=निर्वाह । आनँददानि=आनन्द देने वाले । खोऊ=खोने वाले, मिटाने वाले । (389) आछौ आइ=ठीक है, विरोध नहीं है । (390) चमेली चारु चौसरु=चमेली की चौलड़ी सुन्दर माला । घनसार=कपूर । वोरेऊ=ओले, हिम, बर्फ । उसीर=खस । गुलाबनीरु=गुलाबजल । सोंधे=एक प्रकार का सुगन्धित पदार्थ । कंज=कमल । म्रनाल=कमलनाल । हाल=शीघ्र । मौर=मंजरी । रसाल=आम । ताल०=संगीत में षड्ज आदि स्वरों, उनके वर्णों, उनके अंगों से युक्त ध्वनि जो किसी विशिष्ट ताल में बैठाई हुई रहती है और जो मनोरंजन के लिए गाई जाती है । वेई=वे भी । आँग=अंग, शरीर । आगि=अग्नि । (392)सरनागतनि=शरणागत । खल खंडिबे कों=दुष्टों का संहार करने के लिए । मिति=सीमा । अनरीति=अधर्म । रमि रहे=व्याप्त हैं । तिहूँ पुर=तीनों लोकों में । न्यान=ज्ञान । निरधार=निर्धारण, निश्चय, पक्का (393) अस्तुति=स्तुति । निदान=अन्ततोगत्वा, अन्त में । परिवान=प्रमाण । (394) पीठि देत=पीठ देना-मैदान छोड़ देना, विमुख होना । दारा=स्त्री । सरम=शर्म, लज्जा । नाउ धरै=नाम धरना, निंदा करना । (395) सरन=शरण । बिरानी=पराई, दूसरों की । रापस=राक्षस । डंडु=दण्ड । कलि माँझ=कलियुग में । रछ्या=रक्षा । निकेत=घर । किहि हेत=किस कारण । (396) अरथाइ=समझाकर । (397) छिति=पृथ्वी । छोर लौ=सीमान्त तक । नऊ खंड=भूमि के नौ विभाग-भरत, इलावर्त, किंपुरुष भद्र, केतुमाल, हरि, हिरण्य, रम्य और कुश । पारावार=समुद्र । खल खंडै=दुष्टों का संहार करता है । बरिबंड=बली । ढंड=ढेर । अनरीतै=अधर्म । सोर=शोर, चिल्लाना । रूरे=श्रेष्ठ । वोर लौ=अन्त तक । (399) अंबुद=बादल ।

निसि=रात । अंवुज=कमल । वसन=वस्त्र । भाति=शोभा । (400) अदलौ बदलौ=विनिमय । (401) मान=सम्मान, प्रतिष्ठा । डंड़ु=दण्ड । अडंडनि=अदण्ड्य, स्वेच्छाचारी, निर्द्वन्द्व । डंड़ु=अर्थदण्ड, जुरमाना । तेही घरी=उसी समय । खेत=युद्ध का मैदान । (403) परतीति=प्रतीति, विश्वास । वई=बोना (वीज) । निहचंति=निश्चिन्त। आनँदकंद=आनन्द के बादल । (405) कौनें=किसने । हौ=मैं । लौनें=लावण्य युक्त, सुन्दर । लाडी=वधू । गौनें=विवाह के बाद वधू का पहली वार पतिगृह जाना । (406) बिंग्य=व्यंजना । (407) विसरि=भूल । गुमानु=गर्व । रछस=राक्षस । दवित्त=दैत्य । इहि भाँति है=ऐसे हैं, इस प्रकार के हैं । सियराति हैं=शीतल हो जाती हैं । (409) घंटनि कौ=घंटों का । हीस=हिनहिनाहट । परिपूरि रही=भर रही है, व्याप्त हो रही है । सुखपाल=एक प्रकार की पालकी । बगसे=दिए । जरकसु=जिस पर सोने आदि के तार लगे हों । जग्रउ=जिस पर नग या रत्न आदि जड़े हों । रतनमै=रत्नमय । कौनें=किसने । जेतिऐ=जितनी भी । फबही=शोभित है । (410) बस्त=वस्तु । (411) घात=उपयुक्त अवसर । सोंधे की बासु=सूखी जमीन पर पानी पड़ने से निकलने वाली सुगंध । पूजी=पूरी हुई । (413) महीपति=राजा । मोदु=प्रसन्नता । त्रिपत=तृप्त । भाँति भाँति=विविध प्रकार (के सुख) । डारि=डालना, फेंकना-व्यर्थता । वारि=न्योछावर । (414) उसवास=(अविश्वास) सन्देह । (415) हटकै=वर्जन, हटाना, रोकना । अनख्यात=रुष्ट होते हैं, क्रोध करते हैं । और=अन्य । धरै नाउ=निन्दा करते हैं । हितुनि=हित चाहने वाली, सखियाँ । खटकै=बुरा लगता है । वामें=उसमें । सयानु. न्यानु=जरा भी चतुराई, थोड़ी भी समझदारी । अटकै=अटकना, फँसना, लगा रहना । सिखापन=सीख, शिक्षा । वादि=व्यर्थ । (416) हौनि में=होने में । दूजौ=दूसरा । (417) जियँ=ह्रदय में । तनकु=थोड़ी । कुडीठि=कुदृष्टि । ईठी=प्रीति । अरि=शत्रु । कहें=कहते हैं । विदित=विख्यात । (418) बिसेपनु=विशेपण । (419) लसति=शोभित होती है । पटतर=तुल्य, समान । सरि=तुल्य, सदृश । जोरिवे कौ=जोड़ मिलाने को । भुव=पृथ्वी । आपु कर=अपने हाथों से । (420) फेरु लै=घुमाकर, बहाने से छिपाकर । (421) अली=सहेली । कढ़े=निकले । अलि=भ्रमर । सोधत=खोजना । (422) समसरि=समता । आनि=अन्य। बूझै=पूछे । अनबूझे=न पूछे । (423) कहै=वाच्य रूप । अनकहै=व्यंग्य रूप । चारि भेद=1-पूछा गया वाच्य रूप 2-पूछा गया व्यंग्य रूप 3-न पूछा गया वाच्य रूप 4-न पूछा गया व्यंग्य रूप । (424) गारि=गाली । मारि=मारना-पीटना । मालु=धन-दौलत । बाल=बाला, युवती । नीच कौ नीरु=अधम व्यक्ति के हाथ का जल ।

मादिकताई=मद्य । खूनु=हत्या । खुटाई=खोटापन, बुरा काम । (425) जोगु=योग्य । अडंडनि=अदण्ड्य, निर्द्वन्द्व, स्वेच्छाचारी । डंडु=दण्ड, जुरमाना । बोल=वचन । रताई=रत होना, लीन होना । (426) सेवत हैं=सहायता करते हैं । दारिदु=दारिद्र्य । चमूँ चतुरंग=चतुरंगिणी सेना-हाथी, घोड़ा, रथ और पैदल । हिसाबी=हिसाब से काम करने वाला, नियम-कायदे के अनुसार काम करने वाला । (427) बिरानी=पराई, दूसरे की । खलनि कौ=दुष्टों के प्रति । परिवाहि=ख्याल, किसी बात की ओर चित्त देना । अजस=अपयश । छीजिए=छीजना, चाहना, अपेक्षा करना । घनै=बहुत । जीजिए=जीवित रहिए । (429) पातक=पाप । नसत=नष्ट हो जाते हैं । चढ़ती=वृद्धि । कढ़ती=कढ़ना, निकलना, दूर होना । रढ़ती=7 रढ़ना 7 रटना=बार बार कहना; कीरति की रढ़ती=कीर्तिगान, यशोगान । (430) त्यौंनारि सों=विशेष ढंग से । हेतु=कारण । (431) निजु करि=निश्चय पूर्वक । मेंन=काम । निकाई=सुन्दरता । स्यामा जू=राधाजी । (432) पूछिवौ=प्रश्न । परवान=प्रमाण । (433) फेरु करै=घुमा-फिरा कर बात करती है । आपु सुहाती=मनचाही, मनमानी । मेंन=काम । चेंननि=सुख । सेंननि=संकेतों, राती=अनुरक्त, डूबी । (434) ज्वाप=जवाब। बिबि=दूसरा । बाचें=पढ़कर (उदाहरण) । (435) सु पूतु=अत्यन्त पवित्र । सपूतु=योग्य पुत्र । सिहाइ कैं= ललचकर, मुग्ध भाव से । मया=दया, अनुकंपा । निजु कै=निश्चय पूर्वक । (436) मिहीं=महीन, सूक्ष्म । (437) बदि=ठहराकर, निश्चित कर । औधि=अवधि, समय (मिलने का) । रोचु=अनुराग, चाह । सकोच=संकोच । सोचु=चिन्ता । बामै=नायिका को । दाउ=दाँव । मूरति कामै=कामदेव की मूर्ति से अर्थात्-श्रीकृष्ण से । (438) सरस सरस=उत्तरोत्तर उत्कृष्ट । सरसई=पूर्ण उत्कृष्टता, उत्कृष्टता की पराकाष्ठा । (439) नागरि=स्त्री । रूपवंत=रूपमती । गुनवंत=गुणी । सील=उत्तम आचरण, उत्तम स्वभाव । गजगति=हाथी की सी चाल । लहनौ=सौभाग्य । (440) अंत ही=अन्यत्र । और ही ठाँउ=अन्य स्थान पर । (441) भालुक=भालू । कपि=वानर । गिरिवर=पहाड़ । बहस=किसी विषय को सिद्ध करने के लिए उत्तर प्रत्युत्तर के साथ ऊँची आवाज में बातचीत । रूरे=श्रेष्ठ, बड़े । सटपट=दब जाना, घबरा जाना, सिटपिटाना । सघारैं=संहारें, संहार करें । धरकतु रहै=भयभीत रहता है । (443) तलबेली=आतुरता या बेचैनी । चोंप=इच्छा । सतराइ=नाराज होना । (445) सुहाए= सुन्दर । चोंप=चाह, इच्छा । (447) कामरि=कमली, कंबल (काले रंग का) । धूत=धूर्त । गुंजनि=घुँघुची । (448) आपु सुहाती=इष्ट सिद्धि । अनैसी=अनिष्ट । (449) चकवाइ=चकपकाना, हैरान होना । आनँदकंद=आनन्द के बादल । सग=सुख, चैन । जी=मन । ती कै=स्त्री के । (450)

हेत=कारण । कै=या, अथवा । (451) वोरभि=ओले । वारत=न्योछावर (452) मोदु=प्रसन्न । घनेरे=अत्यधिक । तन=ओर, तरफ । (453) पूरन=व्याप्त । उदधि=समुद्र । मेर=पर्वत । गरबाई=ऊंचाई । जाम=पहर । पूतर्‌यौ=आँखों की पुतलियों में । सौति=सपत्नी । कौतिकु०=आश्चर्य सा होता है, आश्चर्यजनक हैं । (454) तनकु=छोटा । उहु=वह । (455) भोरी=भोली । बैस=वय, उम्र । सील=उत्तम चाल-व्यवहार । बिसेपिए=विशेष रूप से । कोऊवै=कोई भी । जोवत=जोहना, देखना । अघात=तृप्त । पेखिए=देखिए । (456) माफिक=अनुकूल । समाइ=अँटना । (457) जामें=जिसमें, जिसके भीतर । तनु=शरीर । मति=बुद्धि । गति=चाल । बादि=व्यर्थ । बकि=प्रलाप । सिहात=लुभाना, ललचना । तकि=ताकना, देखना । समातु=अँटना उर=हृदय । जकि=भौंचक्का होना, चकपकाना । (458) संसर्गी=सम्बन्धी । (459) हितकारनि=सम्बन्धी, स्नेही, अपने लोग । ठौर=स्थान । बास=रहने का स्थान । भौंर=भंवर, चक्कर । टोहि लए=खोज लिए । अरि=शत्रु । गौर=ध्यानपूर्वक, अच्छी तरह । कलेस=क्लेश, दुख । दाउ=दाँव, बदला । बैरनि=शत्रुओं । पारें=पारना, डालना । दाह=संताप । रौर=प्रचंड, दुर्दमनीय । (460) निपट=बिल्कुल, नितांत । चीन्हौ=चिह्न, लक्षण । बराबरि=समान । क्रतम=कृत्रिम । सुभाइकौ=स्वाभाविक । छपहि=छिप जाय । (461) ह्वाँ=वहाँ । आनि कै=आ कर, उपस्थित । कामकलाई=कामकला । कटीली=रोमांचित । क्योंहूँ=किसी प्रकार भी । सीरी बयारि=शीतल वायु । औरन का हूँ=दूसरों को । (462)औथऐ=उठाना, निषेध । (463) बन्यौ=बना हुआ, सुन्दर । अंग अंग=अंग-प्रत्यंग, प्रत्येक अंग में । अंग=शरीर । बदनु=मुख । सति=सत्य । (464) आन=अन्य । पटतर निहचै=बिल्कुल समान । समरन=स्मरण । (465) आली=सखी । घनी चोंप चाह=प्रेम की अत्यधिक चाहत । पिक बैनी=कोयल के समान वाणी वाली, नायिका । पीतमै=प्रीतम को । द्वाई=दिलाई । (466) समसर=समान, सदृश । भरमु=भ्रम । (467) दीपतिवंत=दीप्तियुक्त पसरी=फैली । मरीचिका=किरण । नर=मनुष्य । म्रगौ=मृग । सलिता=सरिता, नदी । जौन्ह=चाँदनी । हीरनि रास=हीरों की राशि । पुंज=समूह, ढेर । धरा=पृथ्वी । (469) पटतर=उपमा । कीर=तोता । पिक=कोयल । बिंबीफल=कुँदरू । बिद्रुम= मूँगा । समसर=समान । म्रनाल=कमलनाल । श्रीफल=बेल । जानु=जंघा । कदलि तरवर=केले का वृक्ष । आपु कर=अपने हाथ में, अपने वश में । (470) समसर=समानता, साम्य। (471) उर=छाती । धुरवा=मेघ । घनस्याम=काले बादल । न्यारे=अलग । परसी है=स्पर्श की है, अनुभव की है । (472) थिति=स्थिति, अवस्थिति । विसेप=विशेष। (473) रापस=राक्षस । सी=सीता । ही=हृदय । मनवंछित=इच्छित, यथेच्छ ।

लीकैं=मर्यादाएँ। (475) सुभट=योद्धा। हुकमु=आज्ञा। पंक=कीचड़। त्रिसुद्ध=तृपित, प्यासा, अथवा वेगवान्। हय=घोड़े। गय=हाथी। गाजि=गरजते हुए। करवालनि के=तलवारों के। वारपार=(शरीर में) एक ओर से दूसरी ओर तक। महामारु=मारकाट, घमासान। लोहू=खून। दलेलनि=बहाव का जोर, उत्ताल तरंगें। पुरी=नगरी। कनंक की=सोने की। (477) जेर=तंग, परेशान। जोराबरी=जोर जबर्दस्ती। साहिब=मालिक। दलेल=बढ़ा हुआ, जोर, अधिकता। दल=सेना। अकथ्य=अकथनीय। रुधिर=खून। कारौ=काला। उदधि=समुद्र। कीच=कीचड़। (479) अतन=कामदेव। तन काजै=शरीर को। तावति है=तपाती है। उपचारनि कों=उपचार की वस्तुओं को। गुलाबनीरु=गुलाबजल। बहरतु=बहलता। (480) कैऊक=कई। मलूक=सुन्दर, मनोहर। (481) बगसत=(दान) देते हुए। समसरि=समान। फूटत है=विदीर्ण हो जाते हैं। खल दल=दुष्टों का समूह। चमू=सेना। वोरे लगि=ओलों की तरह। गरि=गलना, समाप्त हो जाना। (483) मंदिर=महल। अंबर=वस्त्र। भूषण=आभूषण (रत्न जटित)। कढ़ै=कढ़ना, निकलना, फैलना। प्रकासत=प्रकाशित। कंचनु०=शरीर के रंग का होने से सोना (स्वर्णाभूषण) बच गया, अन्य सब गहने उन्होंने (चोरों ने) छीन लिए। (484) एँन=पूरी तरह। दुरे=छिपे। कुरंगु=हिरन। प्रसंग=मेल, नर-मादा संयोग। सेए=रहे, बसे। गंजन=तिरस्कार करने वाले। (485) निज=निश्चय। गंजन=तिरस्कृत करने वाले। अगम=अगम्य, जिसे वश में न किया जा सके। गम=प्रवेश, वश में कर लेते हैं। ऐई=ये ही (नेत्र)। मेंलवान काजै=मिलाने के लिए, समता देने के लिए। नाउ=नाम। सावक=शावक, बच्चा। बिसेपें=विशेष रूप से। नाउ...मृग=विशेष रूप से मृगशावक का नाम लेते हैं। सोभा०=लेकिन तेरे नेत्रों की शोभा उनसे भी अधिक है। (486) काव्यप्रकास=संस्कृत-आचार्य मम्मट कृत काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ। निजु कै=पूर्णरूपेण, अच्छी तरह। यामें=इसमें (अलंकारशास्त्र में) (489) करम=कर्म, गुण। लहउ=पाओ, प्राप्त करो। मह=में। गुनहु=गुनो, विचारो। (490) मन आनि=मन में लाओ, बैठाओ। आन=अन्य, दूसरा। (493) अर्थ स्पष्ट नहीं हो सका। (494) रंज मन=मन को रंजित करने वाला, आनन्द देने वाला। सौरभु=सुगन्ध। सुभ=उत्तम। कुसम=कुसुम, पुष्प। बाल=बालाएँ, युवतियाँ। पिचकारनि=होली खेलने की पिचकारी। फागु=होली। गान=गीत। बाद=वाद्य, संगीत। गहइ=ग्रहण करता है। रसाल=रसिक। (495) गारि=गारना, पानी के साथ घिसना। घोरि=घोलकर। घनसारु=कपूर। कमल कर=कमल रूप हाथों में। उरई के रचि धाम=खस की टट्टियों के घर बनाकर, चारों तरफ खस की टट्टियाँ

लगाकर । छिरकि=छिड़ककर । लपट=गर्म हवा । (496) छिति=पृथ्वी । अंमरु=अंबर, आकाश । बीजु=बिजली । धुरवा=बादल । झिल्ली=झींगुर । दादुल=मेंढक। मुदित=प्रसन्न । मोहतिं=मोहती हैं । सूहे=लाल रंग के । बसन=वस्त्र । कहकहाइ=कहकहा लगाकर, जोर-जोर से । (497) गिरवर=पर्वत । घन बादल । चहुँ वोर=चारों ओर । घोर=अत्यधिक तेज । वोर=ओला, बिनौली । सलिता=सरिता, नदी । सरोस=रोपपूर्वक, तेज । लकवाह=पानी की बूँदों सहित हवा के तेज झोंके । (498) अन्हाई=नहाई, स्नान की हुई । समसरि=समान । सेत=श्वेत । कुसमनि=फूलों के । लाइ=लगाकर । पयूपनि=अमृत । कैरव=कुमुद (पुष्प) । कुसंम्ह=कुसुम्भ (पुष्प विशेप) । रासु=रासलीला । (499) प्यारी=प्रिया । पीउ=प्रियतम । चीति=सोचकर, समझकर । साल=शाल-एक प्रकार की ऊनी चादर-दुशाला । रजाइनि=रजाई-रुई भरा ओढ़ना-लिहाफ । वोढ़ि=ओढ़कर । निवारहि=दूर करते हैं । आभरन=आभूपण । गंमि=गम्य, प्रवेश, पहुँच । मंगल=आनन्द । (500) वोस=ओस । घामु=धूप । दिनीसइ=दिनेश, सूर्य । दीरघ=दीर्घ, लम्बी । निसि=रात । हिम=शीत । तन=शरीर । अंवर=वस्त्र । तूल=रुई । वोढ़ि=ओढ़कर । निर्धूम=धुआँ रहित । अगरु=सुगन्धित पदार्थ विशेप । सौरभ=सुगन्ध । लहइ=पाते हैं । (501) महत्तत्व=ब्रह्म । नादु=वर्णों का अव्यक्त मूल रूप । आपुनु=स्वयं (502) सब ठौर=सर्वत्र । जियँ=हृदय में । (503) निजु कै=वास्तविक, निश्चयपूर्वक । (504) अगम=अगम्य । (507) अ=अवर्ग-सभी स्वर वर्ण । क=कवर्ग-क, ख, ग, घ, ङ वर्ण-समूह । च=चवर्ग-च, छ, ज, झ, ञ वर्ण-समूह । ट=टवर्ग-ट, ठ, ड, ढ, ण, वर्ण-समूह । त=तवर्ग-त, थ, द, ध, न वर्ण-समूह । प=पवर्ग-प, फ, ब, भ, म वर्ण-समूह । ज=यवर्ग-य, र, ल, व वर्ण-समूह । स=शवर्ग-श, प, स, ह, वर्ण-समूह । बर्ग=वर्ग । (508) कबरग=कवर्ग । टवरग=टवर्ग । तबरगौ=तवर्ग । (509) अपजस=अपकीर्ति । मति=बुद्धि । जबरग=यवर्ग । सबरग=शवर्ग । सुन्य=शून्य । सदंद=संघर्पप्रिय, झगड़ा करने वाला । (510) आदि=आरम्भ । नकार='न' अक्षर । जस हर=यश का हरण करने वाला । हकार='ह' अक्षर । मकार='म' अक्षर । (511) पीढ़ाबंध=दकार-'द' अक्षर । अंतरा=किसी गीत में स्थायी या टेक के बाद का दूसरा चरण । भकार='भ' अक्षर । बकार='ब' अक्षर । लछमी=लक्ष्मी । दातार=दात्री, देने वाली । (512) विप्र=ब्राह्मण । बर्न=वर्ण । निहचै=निश्चय । (513) तबरग=तवर्ग । पबरग=पवर्ग । बैस्य=वैश्य (वर्ण) । सुद्र=शूद्र (वर्ण) । जबर्ग=यवर्ग । सबर्ग=शवर्ग । सर्ग=सृष्टि, रचना । (514) सुता=पुत्री । ता=उसका । सुग्रेह=सुगम, सुबोध । जुत=युत, युक्त । (515) मालकौसिक=मालकोश । उरह=हृदय में । (517) तिय=स्त्री, भार्या । (518) तिया=भार्या । परसिद्ध=प्रख्यात । भुव=लोक में । (519) बनिता=पत्नी, भार्या । (520) बिधि=ब्रह्मा । हरि=विष्णु । ईस्वर=शिव ।

वाद=वाद्य.

रचना । ...